इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BSKE-142
रंगमंच और नाट्यकला

रंगमंच और नाट्यकला

खण्ड सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
खण्ड 1	रंगमंच : प्रकार और निर्माण	7
खण्ड 2	नाटक : वस्तु, नेता और रस	57
खण्ड 3	संस्कृत रंगमंच की परम्परा तथा इतिहास	119

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रोफेसर रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति,श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रोफेसर राधावल्लभ त्रिपाठी
पूर्व कुलपति केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर रमाकान्त पाण्डेय
केन्द्रीय संस्कृत यूनिवर्सिटी, जयपुर परिसर; राजस्थान

प्रोफेसर अभिराज राजेन्द्र मिश्र
पूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रोफेसर दीप्ति त्रिपाठी
पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रोफेसर मालती माथुर
निदेशक मानविकी विद्यापीठ
इग्नू

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई संख्या	पाठ्यक्रम संयोजक एवं सम्पादक
डॉ. संजय कुमार सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर मध्य प्रदेश	खण्ड –01 इकाई– 01 से 05	**डॉ0 देवेश कुमार मिश्र** इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 नौनिहाल गौतम सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग डॉ0 हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर मध्य प्रदेश	खण्ड – 02 इकाई– 06 से 12	
डॉ. राधावल्लभ शर्मा सहायक आचार्य, साहित्य विभाग हरियाणा संस्कृत विद्यापीठ बघोला, पलवल, हरियाणा	खण्ड–03 इकाई– 13 से 16	

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव, इग्नू नई दिल्ली

मार्च, 2022

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2022

ISBN:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्र मुद्रण) द्वारा अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली–110068 से अथवा इग्नू की आधिकारिक वेबसाइट www.ignou.ac.in से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ द्वारा मुद्रित और प्रकाशित ।

लेज़र टाइप सेट–टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर्स

मुद्रण –

विषय सूची

खण्ड 1	**रंगमंच : प्रकार और निर्माण**	**5**
इकाई 1	रंगमंच के प्रकार (1)	7
इकाई 2	रंगमंच के प्रकार (2)	17
इकाई 3	नाट्यगृह की निर्माणविधि (1)	25
इकाई 4	नाट्यगृह की निर्माणविधि (2)	32
इकाई 5	नाट्यगृह की निर्माणविधि (3)	42
खण्ड 2	**नाटक : वस्तु, नेता और रस**	**57**
इकाई 6	विभिन्न आचर्यों के अनुसार नाट्य की परिभाषा तथा भेद	59
इकाई 7	अभिनय तथा वस्तु	67
इकाई 8	अर्थप्रकृतियाँ तथा अन्य नाट्यतत्त्व	76
इकाई 9	नाट्यसंवाद के प्रकार	88
इकाई 10	नायक और नायिका	93
इकाई 11	रस तथा भाव	101
इकाई 12	व्यभिचारी भाव तथा मानसिक स्तर के चार प्रकार	110
खण्ड 3	**संस्कृत रंगमंच की परम्परा तथा इतिहास**	**119**
इकाई 13	नाट्य : उत्पत्ति तथा विकास	121
इकाई 14	रंगमंच के कतिपय अन्य प्रकार	137
इकाई 15	आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच	152
इकाई 16	संस्कृत रंग के प्रसिद्ध निर्देशक	177

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

बी.ए. सामान्य संस्क्रत तृतीय वर्ष के रंगमंच और नाट्यकला नामक पाठ्यक्रम में आपका स्वागत है। यह पाठ्यक्रम कुल तीन खण्डों में विभाजित हैं। 16 इकाइयों के अन्तर्गत पाठ्य विषय का समावेश किया गया है। प्रथम खण्ड की पॉच इकाइयों में आप अग्रलिखित विषयों का अध्ययन करेगें। प्रथम इकाई में रंगमंच के प्रकारों में आप नाट्य गृह के भेद, विकृष्ट या आयत ,नाट्यगृह की परिभाषा एवं विशेषतायें, विकृष्ट नाट्यगृह का परिमाण, चतुरस्र (वर्गाकार) नाट्यगृह, चतुरस्र नाट्यगृह की परिभाषा एवं विशेषतायें, चतुरस्र नाट्यगृह का परिमाण, त्यस्र (त्रिकोण) नाट्यगृह की परिभाषा एवं विशेषतायें, त्यस्र नाट्यगृह का परिमाण आदि के विषय में जानेंगे। इकाई दो में ,रंगमंच के प्रकार भाग दो के लिए आप ,नाट्यगृहों के ज्येष्ठ, मध्यम और अवर भेद, भरत सम्मत नाट्यगृह के भेद, अभिनवगुप्त सम्मत नाट्यगृह के अठारह भेद, आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी का नाट्यगृह विषयक अभिमत, ब्राह्म आदि नाट्यगृहों का परिचय का अध्ययन करेंगे इकाई तीन नाट्यगृह की निर्माणविधि भाग एक है, इसमें आप भूमिशोधन, विभाजन, स्थापन, भित्तिकर्म, स्तम्भ आदि की स्थापना, स्तम्भों के देवता, नाट्यगृह सम्बद्ध अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य आदि को जानेंगे। इकाई चार नाट्यगृह की निर्माणविधि भाग दो में आप मत्तवारणी का निर्माण, रंगपीठ और रंगशीर्ष, षड्दारुक का निर्माण, द्वारनिर्माण की जानकारी प्राप्त करेंगे। इकाई पॉच नाट्यगृह की निर्माणविधि भाग तीन में आपको काष्ठविधि, भित्तिकर्म, सुधाकर्म, नेपथ्यगृह, प्रवेश और निकास की व्यवस्था, प्रेक्षकों के उपवेशन की व्यवस्था, ध्वनि एवं प्रकाश की व्यवस्था, भरत के अनुसार विकृष्ट मध्य की सर्वश्रेष्ठता, रंगमंच के विषय में अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी प्राप्त होगी । खण्ड दो नाटक : वस्तु, नेता और रस के वर्ण्यविषय का है। इसमें कुल सात इकाइयों में आप विभिन्न आचर्यों के अनुसार नाट्य की परिभाषा तथा भेद, भरत के अनुसार नाट्य का लक्षण, दशरूपक के अनुसार नाट्य का लक्षण, विश्वनाथ तथा अन्य आचार्यों के अनुसार नाट्य का स्वरूप, नाट्य के भेद, नाटक प्रकरण, अंक, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम, ईहामृग, उपरूपक की परिभाषा तथा भेद,अभिनय तथा वस्त, अर्थप्रकृतियाँ तथा अन्य नाट्यतत्त्व, नाट्यसंवाद के प्रकार, सर्वश्राव्य या प्रकाश, अश्राव्य या स्वगत, अनियतश्राव्य दृजनान्तिक, अपवारित, आकाशभाषित, नायक और नायिका, रस तथा भाव, रस परिभाषा तथा स्वरूप, व्यभिचारी भाव तथा मानसिक स्तर के चार प्रकार आदि का अध्ययन करेंगे। खण्ड तीन में चार इकाइयों के अन्तर्गत आप संस्कृत रंगमंच की परम्परा तथा इतिहास में नाट्य की उत्पत्ति तथा विकास, प्रागैतिहासिक काल, वैदिक काल, महाकाव्य कालीन रंगमंच, पौराणिक काल, राजसभा का संस्कृत रंगमंच, रंगमंच के कतिपय अन्य प्रकार, मन्दिरों का संस्कृत रंगमंच, खुला रंगमंच, लोक रंगमंच, व्यापारिक रंगमंच, संस्कृत रंगमंच की वैश्विकता आधुनिक युग में संस्कृत रंगमंच, वाराणसी, उज्जायिनी, राजस्थान तथा दक्षिण के प्रदेशों में संस्कृत रंगमंच, संस्कृत रंगकर्म के लिये समर्पित संस्थायें, सोपानम् केरल, युवतरंग राजस्थान, ज्ञानप्रवाह वाराणसी, कालिदास संस्कृत अकादमी, सागर वि. वि., राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान का वसन्तोत्सव तथा कौमुदी महोत्सव, संस्कृत रंग के प्रसिद्ध निर्देशक कवालम नारायण पणिक्कर, कमलेशदत्त त्रिपाठी, राधावल्लभ त्रिपाठी, भारत रत्न भार्गव, तथा अन्य संस्कृत नाट्य निर्देशकों के बारे जानेंगे।

इस प्रकार तीन खण्डों की कुल सोलह इकाइयों में आप नाट्यमण्डप निर्माण विधि से लेकर नाट्यशास्त्र के तत्वों, रूपक के भेदोपभेदों का अध्ययन करतें हुए संस्कृत रंग के प्रसिद्ध निर्देशकों के विषय में जानकारी प्राप्त करके भारतीय रंगमंच और नाट्यकला का उल्लेख कर सकेंगे ।

खण्ड 1

रंगमंच : प्रकार और निर्माण

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 1 परिचय

बी.ए. सामान्य संस्क्रत तृतीय वर्ष के रंगमंच और नाट्यकला नामक पाठ्यक्रम में आपका स्वागत है। यह पाठ्यकम कुल तीन खण्डों में विभाजित हैं। प्रथम खण्ड का नाम रंगमंच : प्रकार आरै निर्माण है। इस खण्ड में कुल पॉच इकाइयॉ हैं। इन इकाइयों में आप जिन विषयों का अध्ययन करेंगें उनका शीर्षक के साथ परिचय इस प्रकार है–

इकाई 1 रंगमंच के प्रकार (1) – नाट्य गृह के भेद, विकृष्ट या आयत नाट्यगृह की परिभाषा एवं विशेषतायें, विकृष्ट नाट्यगृह का परिमाण, चतुरस्र (वर्गाकार) नाट्यगृह, चतुरस्र नाट्यगृह की परिभाषा एवं विशेषतायें, चतुरस्र नाट्यगृह का परिमाण, त्यस्र (त्रिकोण) नाट्यगृह की परिभाषा एवं विशेषतायें, त्र्यस्र नाट्यगृह का परिमाण।

इकाई 2 रंगमंच के प्रकार (2) – नाट्यगृहों के ज्येष्ठ, मध्यम और अवर भेद, भरत सम्मत नाट्यगृह के भेद, अभिनवगुप्त सम्मत नाट्यगृह के अठारह भेद, आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी का नाट्यगृह विषयक अभिमत, ब्राह्म आदि नाट्यगृहों का परिचय

इकाई 3 नाट्यगृह की निर्माणविधि (1)– भूमिशोधन, विभाजन, स्थापन, भित्तिकर्म, स्तम्भ आदि की स्थापना ,स्तम्भों के देवता ,नाट्यगृहसम्बद्ध अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य।

इकाई 4 नाट्यगृह की निर्माणविधि (2)– मत्तवारणी का निर्माण रंगपीठ और रंगशीर्ष ,षड्दारुक का निर्माण, द्वारनिर्माण,

इकाई 5 नाट्यगृह की निर्माणविधि (3)– काष्ठविधि, भित्तिकर्म, सुधाकर्म, काष्ठविधि, नेपथ्यगृह, प्रवेश और निकास की व्यवस्था, प्रेक्षकों के उपवेशन की व्यवस्था, ध्वनि एवं प्रकाश की व्यवस्था, भरत के अनुसार विकृष्ट मध्य की सर्वश्रेष्ठता, रंगमंच के विषय में अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य।

उक्त पॉचों इकाइयों में आप रंगमंच के प्रकार और निर्माण के विषय में विस्तार से अध्ययन करने के पश्चात् रंगमंच निर्माण विधि का भलीभांति उल्लेख कर पाएंगें।

इकाई 1 रंगमंच (नाट्यमण्डप) : प्रकार और निर्माण

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 रंगमंच (नाट्यमण्डप) के प्रकार (भाग एक)

- 1.3.1 विकृष्ट या आयत नाट्यमण्डप की परिभाषा
- 1.3.2 विकृष्टनाट्यमण्डप का परिमाण एवं विशेषताएं
- 1.3.3 चतुरस्र नाट्यमण्डप की विशेषता एवं परिभाषा
- 1.3.4 चतुरस्र नाट्यमण्डप का परिमाण
- 1.3.5 त्र्यस्रनाट्यमण्डप की परिभाषा एवं विशेषताएँ

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.7 बोध प्रश्न

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप :

नाट्यमंचन की दृष्टि से रंगमंच (नाट्यमण्डप) के आकार–प्रकार की जानकारी प्राप्त करेंगें।

- रंगमंच (नाट्यमण्डप) का परिचय का परिचय बता सकेगें।
- रंगमंच (नाट्यमण्डप) के विविध भेदों को भली–भांति समझ सकेंगे।
- भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों के अनुसार रंगमंच (नाट्यमण्डप) की विशेषता से अवगत हो सकेंगे।
- अभिनय की दृष्टि से रंगमंच (नाट्यमण्डप) के महत्त्व का बोध करा सकेंगें।

1.2 प्रस्तावना

आचार्य भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में नाट्यमण्डप का विवेचन किया गया हैं जिसे 'रंगमंच' भी कहा जाता है। अभिनय की दृष्टि से रंगमंच का विशेष महत्त्व होता है। रंगमंच अभिनय का वह सुखद भाग है जहाँ सहज रूप से अभिनय होता है। अभिनय की दृष्टि से भरत ने आकार रूप में तीन प्रकार के रंगमंच का विधान किया है– विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र। विकृष्ट नाट्यमण्डप आयताकार, चतुरस्र वर्गाकार और त्र्यस्र त्रिकोण (त्रिभुजाकार) होता है। अणु, रज पूर्वक हस्त दण्ड आदि के द्वारा रंगमंच का मापन होता है। जिसके आधार पर रंगमंच का आकार निर्धारित होता है। उपर्युक्त तीनों प्रकार के रंगमंच के विषय में उपलब्ध नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर अध्ययनपरक विषय–वस्तु को इस इकाई में प्रस्तुत किया जा रहा है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

1.3 रंगमंच (नाट्यमण्डप) के प्रकार (भाग एक)

नाट्य प्रयोग के लिए प्रेक्षागृह तथा नाट्यमण्डप की तरह रंगमंच शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। यह स्थान रंजन के मुख्य स्थल होने के कारण रंगमंच के नाम से जाना जाता है। नाट्य के उद्देश्य में भी बताया गया है कि यह दुःखी, श्रान्त, शोकार्त आदि लोगों के लिए विश्राम का स्थल है। इसलिए जिस मंच पर नाट्य का अभिनय किया जाता है उसे रंगमंच कहा जाता है तथा उसी को नाट्यभाषा में नाट्य मण्डप या पेक्षागृह कहा जाता है। यह स्थल सर्वविध आनन्द का निकेतन होता है। यहाँ नाट्य अभिनय का होता है। जिसके सम्बन्ध में आचार्य भरत ने कहा है—

इहादिर्नाट्ययोगस्य नाट्यमण्डप एव हि।
तस्मात्तस्यैव तावत्त्वं लक्षणं वक्तुमर्हसि।। (ना.शा. 2/3)

अर्थात् यहाँ नाट्य प्रयोग का मुख्य तत्त्व नाट्यमण्डप ही है इसलिए सर्वप्रथम उसी का लक्षण किया जाना चाहिए। यहाँ 'योग' से तात्पर्य नाट्य उत्पत्ति वे प्रयोग से है। 'तावत्' पद से पूर्व में किये गये प्रश्नों को न छोड़ना है, 'एवं' पद को लक्षण शब्द से जोड़ा गया है। इतिकर्त्तव्यता (रचना—प्रकार) उसी का ही अंग है और यजन—पूजन भी नाट्यमण्डप के निर्माण के अनन्तर होगा यह प्रदर्शित करता है। नाट्यमन्दिर, नाट्यगृह, रंग, रंगमण्डप, नाट्यशाला, नाट्यवेश्म् आदि शब्दों का प्रयोग भी इसके लिए नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में मिलता है। जिसके महत्त्व के विषय में नाट्यशास्त्र में कहा गया है—

दिव्यानां मानसी सृष्टिर्गृहेषूपवनेषू च।
नराणां यत्नतः कार्याः लक्षणाभिहिताः क्रिया।। (ना.शा. 2/5)

अर्थात् देवताओं के गृहों और उपवनों के निर्माण में मानसी सृष्टि होती है किन्तु मनुष्यों के लक्षण शास्त्र में कही हुई क्रिया को यत्नपूर्वक करना चाहिए। यहाँ पर मानसी कार्य व्यवहार के साथ शारीरिक कार्य महत्त्वशील होते हैं। चाहे अभिनय हो या नाट्यमण्डप का निर्माण दोनों में सावधानी अपेक्षित होती है क्योंकि दोनों ही नाट्यरूप से सम्बन्धित हैं। दोनों का कार्य रंजन है। यदि इनके उद्भव एवं विकास की बात करें तो धार्मिक भावना ही वह कारण है जिससे रंगमंच अपने स्वरूप में आया। अनेकों विद्वानों का मानना है कि भारत के लोग चमत्कार पर विश्वास करते हैं। अतः चमत्कारित घटनाओं से ही नाट्य का विकास हुआ होगा। प्रायः यह विश्वास किया जाता है कि वेदों की भांति नाट्य का जन्म भी ब्रह्मा के द्वारा हुआ है। जिसका उल्लेख भी नाट्यशास्त्र में— 'श्रयूतां नाट्य—वेदस्य सम्भवो ब्रह्मानिर्मितः' (ना.शा. 1/7) मिलता है। प्राचीन मिस्र में नाट्य के विषय में ऐसी धारणा थी कि ओसरिस की पूजा से नाट्य की उत्पत्ति मानी जाती है। भारत में सबसे प्राचीन सभ्यता का परिचय सिन्धु सभ्यता से मिलता है। उसके अवशेष जो सिन्ध की उपत्यका में मिले हैं उनमें कुछ मिट्टी के मुँह पर लगाने वाले चेहरे मिले हैं जो मनुष्यों की तरह है। किन्तु उनके सिर पर दो सींग विद्यमान हैं। एक की सींग बैल की सींग के समान है तथा दूसरे की भेढ़े के समान है। जिससे यह अनुमान होता है कि प्राचीन सिन्धुवासियों के नगरों में नाटक का अभिनय होता था। नट—नटी की काँसे की मूर्ति भी इस धारणा को पुष्ट करती है कि सिन्धु वासी अभिनय कला से सम्बन्ध रखते थे।

सबसे प्राचीन साहित्यिक या यह कहे कि प्रामाणिक स्रोत नाट्य के विषय में यजुर्वेद से मिलता है– (शु. यजुर्वेद–30/61)। साथ ही ऋग्वेद के संवाद सूक्त भी नाट्य अभिनय की ओर संकेत करते हैं। वैयाकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी में नट और नन्दीकार (अष्टा. 3/2/21) शब्द आया है। जिससे यह कहा जा सकता है कि उस समय रंगभूमि की व्यवस्था थी। अर्थशास्त्र के अध्यक्षप्रचार अधिकरण के प्रथम अध्याय के 41 व 42 में भी नट, नर्तक, गायक, वादक आदि शब्दों के प्रयोग के साथ नाट्यशाला शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार बौद्ध निकायों में भी नट आदि शब्द मिलते हैं। पतंजलि के महाभाष्य में कंसवध और बलिवध नाटकों के विषय में वर्णन किया गया है। वाल्मीकि रामायण से भी ज्ञात होता है कि नट–नर्तकों संघ बनाया गया था (अयो. काण्ड. 6/14)। कामसूत्र में प्रेक्षण शब्द मिलता है जो प्रेक्षागृह से सम्बन्धित है।

कुशजातक और उदय जातक में नट और नाटक शब्द मिलते हैं। जैन रायपसेणियसुत्त में नाट्यगृह का भी एक प्राचीन वर्णन मिलता है। नाट्य भवन को पेच्छाघर कहा गया है। इस घर में कई वेदियाँ होती थीं तथा यह अनेकों खम्बों व अर्धचन्द्राकार तोरणों से सुशोभित था, जिन पर शालभंजिकाएं तथा इहामृग बनाकर लगाया गया होता था। इस तरह के भवनों की दीवाल सुन्दर चिकनी बनाई जाती थी जिन पर विविध प्रकार की चित्रकारी की जाती थी। छत पर कमल तथा लताओं की आकृति बनायी जाती थी। रंगद्वार पर तोरण बनाये जाते थे तथा दोनों ओर चन्दन से सुगन्धित जल भरे हुए घढ़े रखे जाते थे। रंगमंच के सामने रंगीन पर्दा डाला हुआ होता था जिनमें घंटियां लटकी रहती थी जिससे पर्दा खोलने के समय वे बजती थी। रंगमंच को अखाडग कहा जाता था। जो नाट्यमण्ड के बीच में स्थिर रहता था। इसमें बहुत यन्त्र लगे होते थे जो विद्याधरों इत्यादि को दिखाने कार्य में प्रयुक्त होते थे। इस रंगमंच के बीच में एक सिंहासन रहता था (नाट्यम् 80/ 2017)। इस तरह भारतीय परम्परा में अनेक समय व स्थान पर नाट्य अभिनय एवं नाट्यमण्डप का संकेत मिलते हैं। जिससे रंगमंचीय अभिनय की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। नाट्यशास्त्र व अग्निपुराण के साथ अनेक गुफाओं में भी नाट्यमण्डप के संकेत मिलते हैं। कालिदास के 'कुमारसम्भवम्' 1/10 व मेघदूत पूर्व 27 से तथा अश्वघोष के 'सौन्दरानन्द' 6/33 से भी गुफा नाट्यमण्डप का संकेत मिलता है।

इन सबके के बावजूद यदि रंगमंच (नाट्यमण्डप) के आरम्भिक अवस्था पर विचार किया जाए तो हमारा ध्यान वैदिक यज्ञ–अनुष्ठान की ओर ही जाता है और उसी से रंगमंच के विकास की परम्परा विकसित हुई है। वस्तुतः यज्ञीय विधि–विधानों को अपने स्वभाव से ही दानव नष्ट करने का प्रयास करते रहते थे। यह कार्य वे संगठित होकर ही प्रायः करते थे। ऐसी ही कुछ स्थिति अभिनय के समय भी उनके द्वारा उत्पन्न की जाती थी। जिसकी रक्षा के लिए इन्द्र आगे आये। उन्होंने अपने उत्तम ध्वज के द्वारा रंगपीठ पर उपस्थित असुरों को मार–मारकर जर्जर बना दिया। यह घटनाएं आये दिन होने लगी, इसलिए अभिनय के लिए किसी सुरक्षित स्थान की आवश्यकता होने लगी। दानवों रंग कार्य विध्वंस की इस बात से भी बल मिलता है क्योंकि रामायण काल में विश्वामित्र आदि ऋषियों को यज्ञ का विध्वंस भी असुरों द्वारा किया जाता था। जिसकी सुरक्षा के लिए राम और लक्ष्मण जंगल में गये थे। इसी तरह असुरों से सुरक्षित स्थान के लिए नाट्यमण्डप का निर्माण भी प्रारम्भ किया गया होगा,जो धीरे–धीरे एक शास्त्रीय रूप ले लिया। वर्णन भी मिलता है कि देवता नाट्यमण्डप निर्माण के लिए ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने सर्वगुण सम्पन्न सुरक्षित नाट्यगृह का निर्माण करने के

लिए विश्वकर्मा को आदेश दिया। इस प्रकार विश्वकर्मा ने सर्वगुण सम्पन्न और हर प्रकार से सुरक्षित नाट्यमण्डप की रचना किया। आचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में नाट्यमण्डप आदि पर सम्यक् विचार करके विश्वकर्मा के द्वारा उसके तीन प्रकार की कल्पना की जो इस प्रकार है–

विकृष्टश्चतुरश्रश्च त्र्यश्रश्चैव तु मण्डपः।
तेषां त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठं मध्यं तथाऽवरम्।। (ना.शा. 2/8)

अर्थात् विकृष्ट (आयताकार) चतुरस्र (वर्गाकार) और त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) ये तीन प्रकार के नाट्यमण्डप होते हैं। नाट्यमण्डप के ज्येष्ठ, मध्यम और अवर ये तीन प्रमाण हैं यानि कहने का भाव यह कि नाट्यमण्डप का निर्माण आकार तथा परिमाण के आधार पर किया जाता है। आकार की दृष्टि से नाट्यमण्डप विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र भेद से तीन प्रकार का होता है। परिमाण की दृष्टि से इसमें से प्रत्येक के तीन भेद हो जाते हैं– ज्येष्ठ मध्यम और अवर। आचार्य भरत ने हस्तदण्ड समाश्रयम् के आधार पर हाथभर का दण्ड मानकर नौ प्रकार के प्रेक्षागृह की कल्पना किया है। उनके अनुसार हाथ भर का दण्ड अर्थ लेने पर हाथ प्रमाण (नाप) के आधार पर नौ प्रकार के नाट्यमण्डप (रंगमंच) माने जाते हैं। जो इस प्रकार हैं। परिमाण के आधार पर नौ प्रकार के प्रेक्षागृह–

विकृष्ट नाट्यमण्डप –

1. ज्येष्ठ – 108×64 हाथ
2. मध्यम् – 64×32 हाथ
3. अवर – 32×16 हाथ

चतुरस्र नाट्यमण्डप –

1. ज्येष्ठ – 108×108 हाथ
2. मध्यम् – 64×64 हाथ
3. अवर – 32×32 हाथ

त्र्यस्र नाट्यमण्डप –

1. ज्येष्ठ – 108 हाथ समात्रिवाहु (त्रिभुजाकार)
2. मध्यम् – 64 हाथ समात्रिवाहु (त्रिभुजाकार)
3. अवर – 32 हाथ समात्रिवाहु (त्रिभुजाकार)

कुछ आचार्य 'हस्तदण्डसमाश्रयम्' में हाथ और दण्ड दोनों को अलग–अलग पद मानते हैं। भरत के अनुसार चार हाथ का दण्ड होता है– चतुर्हस्तो भवेद्दण्डः। इस प्रकार हाथ के प्रमाण के आधार पर नौ भेद और उसी प्रकार दण्ड प्रकार प्रमाण के आधार पर नौ भेद मिलाकर कुल अट्ठारह भेद नाट्यमण्डप के हो जाते हैं। किन्तु यह भेद सभी ग्राह्य नहीं है। अतः नौ भेद ही नाट्यमण्डप के सर्वमान्य भेद हैं। परन्तु 'विष्णुधर्मोत्तर' पुराण में केवल विकृष्ट तथा चतुरस्र नाट्यमण्डप का ही उल्लेख मिलता है। 'नाट्यशास्त्र' में ज्येष्ठ, मध्यम और अवर नाट्यमण्डप का परिमाण बताते हुए कहा गया है–

अष्टाधिकं शतं ज्येष्ठ चतुःषष्टिस्तु मध्यमम्।
कतीयस्तु तथा वेम हस्ता द्वात्रिंशदिष्यते।। (ना.शा. 2/10)

अर्थात् एक सौ आठ हाथ का नाट्यमण्डप ज्येष्ठ चौसठ हाथ का मध्यम और बतीस हाथ का अवर (कनिष्ठ) नाट्यमण्डप होता है। ऊपर जो प्रमाण के आधार पर नाट्यमण्डप के विभाजन की बात की गयी थी तो अणु, रज, बाल, लिक्षा, यूका, यव, अंगुल, हस्त और दण्ड ये नौ प्रमाण हैं। नाट्यशास्त्र में बताया गया है कि आठ अणु का एक रज होता है। आठ रज मिलाकर एक बाल कहलाते हैं। आठ बालों की एक लिक्षा होती है। आठ लिक्षा की एक यूका होती है। आठ यूका का एक यव होता है। आठ एव का एक अंगुल होता है। चौबीस अंगुल का एक हाथ होता है और चार हाथ का एक दण्ड होता है (ना.शा. 2/10)। इसी के आधार पर नाट्यशास्त्र में नाट्यमण्डपों का उल्लेख भी किया गया जो इस प्रकार है–

एक सौ आठ हाथ का नाट्यमण्डप ज्येष्ठ, चौसठ हाथ का मध्यम और बत्तीस हाथ का अधम (कनिष्ट) नाट्यमण्डप होता है। यहाँ यह भी बतलाया गया है कि देवताओं के लिए ज्येष्ठ नाट्यमण्डप होना चाहिए, राजाओं के लिए मध्यम तथा शेष प्रजाओं के लिए कनिष्ट नाट्यमण्डप होता है। इस प्रकार सबसे बड़ा नाट्यमण्डप ज्येष्ठ होता है। जिस भी अभिनय में युद्ध, मार–काट, भगदड़, उल्कापात आदि के दृश्य दिखाने होते हैं उनके लिए ज्येष्ठ नाट्यमण्डप है, उपयुक्त माना जाता है। छोटे नाट्यमण्डप में इनका प्रदर्शन ठीक प्रकार से सम्भव नहीं होता है। लेकिन नाट्यशास्त्र में सभी नाट्यमण्डपों में मध्यम–नाट्यमण्डप को श्रेष्ठ कहा गया है–

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां प्रशस्तं मध्यमं स्मृतम्।
तत्र पाठ्यं च गेयं च सुखश्राव्यतरं भवेत्।। (ना.शा. 2/12)

अर्थात् सभी प्रकार के प्रेक्षागृहों ने मध्यम प्रेक्षागृह को प्रशस्त अर्थात् सर्वोत्तम कहा गया है। क्योंकि इसमें पाठ्य (संवाद) तथा गेय (संगीत) सुख से सुना जा सकता है। मध्यम प्रेक्षागृह आकार के अनुसार न अधिक छोटा होता है और न अधिक बड़ा। इसलिए यह श्रव्य तथा दृश्य दोनों रूपों में अनुकूल होता है। रंगमंच की यह मर्यादा होती है कि श्रोता को अभिनय के सभी पक्ष सहज ग्राह्य हो।

1.3.1 विकृष्ट या आयत नाट्यमण्डप की परिभाषा

नाट्यमण्डपों प्रथम स्थान विकृष्ट या आयत नाट्यमण्डप का है। यह आकार में सबसे बड़ा होता है। विकृष्ट शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है– विभागेन कृष्टः दीर्घः इति विकृष्टः अर्थात् लम्बाई–चौड़ाई चारों दिशाओं में विभागेन अर्थात् अलग–अलग खींचा गया हो (कृष्टः) यानि चौड़ाई की अपेक्षा लम्बाई अधिक हो, चारों कोने बराबर न हो उसे विकृष्ट नाट्यमण्डप कहा जाता है। विकृष्ट नाट्यमण्डप के सम्बन्ध में आचार्य अभिनवगुप्त ने लिखा है– विकृष्टश्चेति विभागेन कृष्टो ट्टर्घो न तु चतसृषु दिक्षु साम्येन। अर्थात् विभाग के अनुसार कृष्ट यानि खम्बा चारों दिशाओं में समान नहीं होने वाला विकृष्ट नाट्यमण्डप कहलाता है। यहाँ यह विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। आमने–सामने बराबर और चौड़ाई से लम्बाई के अधिक ही इस नाट्यमण्डप की कसौटी होती है। इस नाट्यमण्डप के तीन भेद होते हैं– ज्येष्ठविकृष्ट नाट्यमण्डप, मध्यमविकृष्ट नाट्यमण्डप, अवरविकृष्ट नाट्यमण्डप।

1.3.2 विकृष्टनाट्यमण्डप का परिमाण एवं विशेषताएं

परिमाण की दृष्टि से यह नाट्यमण्डप सबसे बड़ा होता है। इस दृष्टि से इनके तीन भेद किये जाते हैं– ज्येष्ठ, मध्यम और अवर। इन नाट्य मण्डपों का निश्चित परिमाण बतलाये गये हैं। उसी निश्चित परिमाण के आलोक में ही इनका तीन भेद नाट्याचार्यों द्वारा किया गया है– ज्येष्ठविकृष्ट नाट्यमण्डप, मध्यमविकृष्ट नाट्यमण्डप और अवरविकृष्ट (कनिष्ट) नाट्यमण्डप। कहने का भाव यह है कि ज्येष्ठविकृष्ट नाट्य मण्डप की लम्बाई 108 हाथ और चौड़ाई 64 हाथ होती है, मध्यमविकृष्ट नाट्य मण्डप की लम्बाई 64 हाथ और चौड़ाई 32 हाथ तथा अवरविकृष्ट नाट्यमण्डप की लम्बाई 32 हाथ और चौड़ाई 16 हाथ होती है। जिसे अधोलिखित रेखाचित्र से समझा जा सकता है–

आचार्य भरत के अनुसार विकृष्ट नाट्यमण्डपों का स्वरूप–

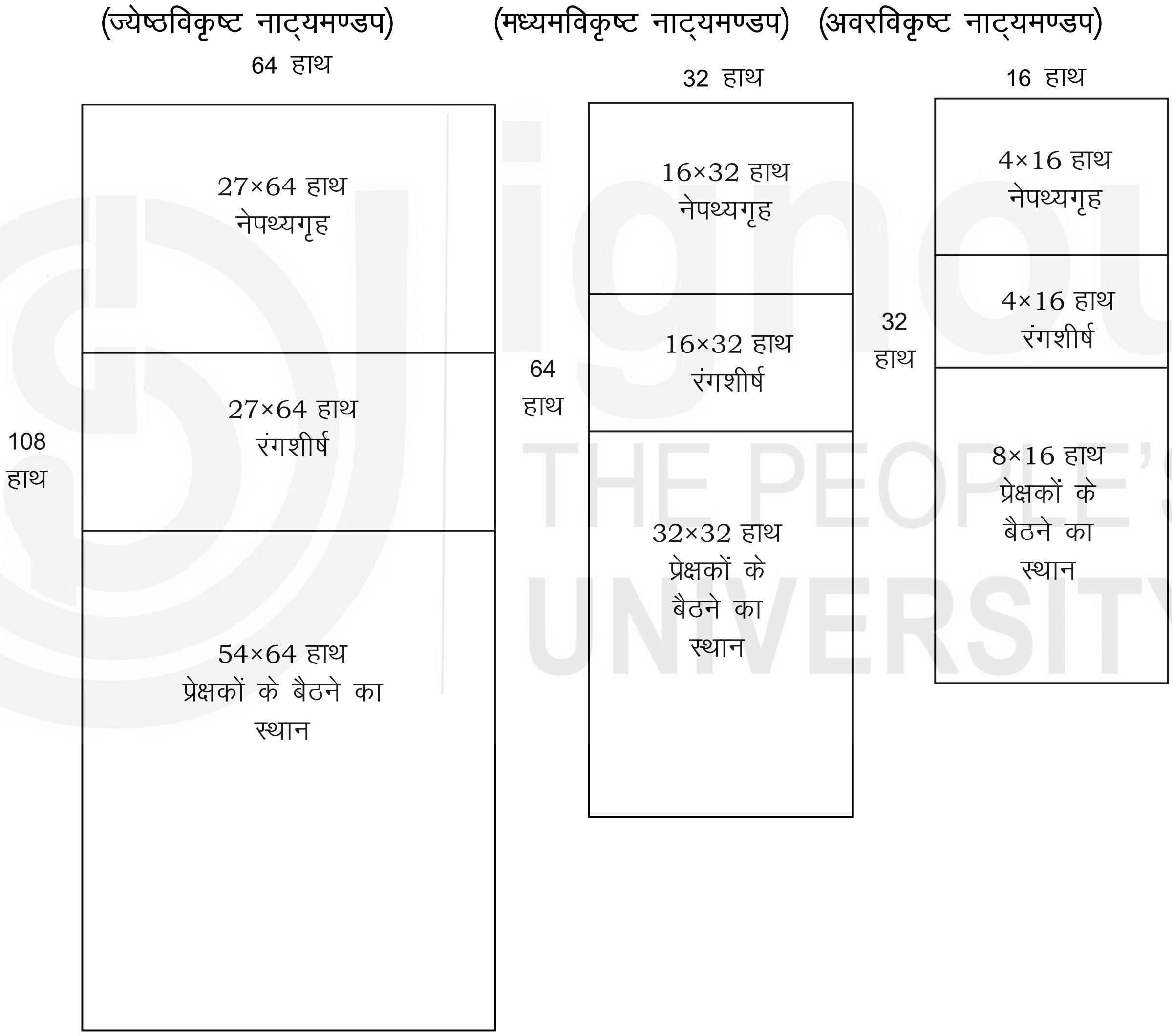

नोट– इन तीनों नाट्यमण्डपों में मध्यमविकृष्ट नाट्यमण्डप को अभिनय की दृष्टि से उत्तम माना जाता है क्योंकि इसे अभिनय एवं श्रवण की दृष्टि से उपयुक्त माना जाता है। इस नाट्यमण्डपों के आधे भाग में प्रेक्षकों के स्थान का निर्माण किया जाता है तथा शेष आधे में बराबर नेपथ्य और रंगशीर्ष का निर्माण किया जाता है। नाट्यशास्त्र में यह भी बतलाया गया है कि कौन सा नाट्यमण्डप किसके उपयोग के लिए है और किसके उपयोग के लिए नहीं है। इस सम्बन्ध में आचार्य भरत का कथन है–

देवानां तु भवेज्ज्येष्ठं नृपाणां मध्यमं भवेत्।
शेषणां प्रकृतीनां तु कनीयः संविधीयते।। (ना.शा. 2/11)

अर्थात् देवताओं के लिए ज्येष्ठ नाट्यमण्डप होना चाहिए, राजाओं के लिए मध्यम् तथा शेष प्रजाओं के लिए कनिष्ट नाट्यमण्डप होना चाहिए। इस नाट्य मण्डप में देवता और असुर के युद्ध आदि का मंचन होता है। नायक–प्रतिनायक के इस अभिनय में आरभटी प्रधान वृत्ति होती है। इस सम्बन्ध में अभिनवगुप्त का कहना है कि देवता और असुर जिसमें नायक और प्रतिनायक हों, ऐसे डिम आदि रूपकों में अभिनय के लिए 108 हाथ वाला विकृष्ट अर्थात् ज्येष्ठ नाट्यमण्डप होता है। यहाँ पर मनुष्य के लिए भी नाट्यमण्डप का परिमाण बतलाते हुए आचार्य भरत ने कहा है–

चतुः षष्टिकरान्कुर्माद्दीर्घत्वेन तु मण्डपम्।
द्वात्रिंशतं च विस्तारान्मर्त्यानां यो भवेदिह।। (ना.शा. 2/20)

अर्थात् इनमें से मनुष्यों के लिए प्रेक्षागृह की लम्बाई 64 हाथ और चौड़ाई 32 हाथ बनानी चाहिए। कहने का भाव यह है कि मनुष्यों का नाट्य मण्डप 64 हाथ लम्बा और 32 हाथ चौड़ा होना चाहिए। बड़ा नाट्यमण्डप का अभिनय एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होते हैं। मर्त्यानां अर्थात् मनुष्यों के लिए इस पद से सूचित होता है कि इससे अधिक परिमाण वाला यानि बड़ा नाट्य मण्डप से कोई लाभ नहीं है। बड़ा मण्डप अभिनय की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होता है। यह मध्यम नाट्यमण्डप ही सर्व उपयुक्त है।

1.3.3 चतुरस्र नाट्यमण्डप की विशेषता एवं परिभाषा

यह नाट्यमण्डप चारों दिशाओं में बराबर चौकोण होता है– चतसृषु दिक्षु साभ्येन कृष्टः इति चतुरस्रः जिसकी चारों भुजाएं समान हों ऐसा वर्गाकार क्षेत्र वाला मण्डप चतुरस्रमण्डप कहलाता है। अर्थात् कहने का अभिप्राय यह है जिसकी लम्बाई और चौड़ाई बराबर हो उस नाट्यमण्डप को चतुरस्र नाट्यमण्डप या चतुरस्र रंगमंच कहते हैं। इस नाट्यमण्डप को मध्यम नाट्यमण्डप भी कहा जाता है (ना.शा. 2/26)। कहने का भाव यह है जिस नाट्यमण्डप की चारों दिशा बराबर–बराबर हो उसे चतुरस्र नाट्यमण्डप या चतुरस्र रंगमंच कहते हैं। इसके तीन भेद परिमाण आधारित हैं– ज्येष्ठचतुरस्र नाट्यमण्डप, मध्यमचतुरस्र नाट्यमण्डप, अवरचतुरस्र नाट्यमण्डप।

1.3.4 चतुरस्र नाट्यमण्डप का परिमाण

आकार की दृष्टि से चतुरस्र नाट्यमण्डप के भी तीन भेद किए जाते हैं– ज्येष्ठ, मध्यम और अवर। इन नाट्यमण्डपों के निश्चित परिमाण बतलाये गये हैं। उसी निश्चित परिमाण के आलोक में नाट्याचार्यों के द्वारा चतुरस्र नाट्यमण्डप के तीन भेद किया गया है। यथा– ज्येष्ठचतुरस्र नाट्यमण्डप, मध्यमचतुरस्र नाट्यमण्डप और अवरचतुरस्र नाट्यमण्डप। कहने का भाव यह है कि ज्येष्ठचतुरस्र नाट्यमण्डप की लम्बाई और चौड़ाई दोनों बराबर 108×108 हाथ होती है, मध्यमचतुरस्र नाट्यमण्डप की लम्बाई और चौड़ाई 64×64 हाथ तथा अवरचतुरस्र नाट्यमण्डप की लम्बाई और चौड़ाई 32×32 हाथ होती है। जिसे अधोलिखित रेखाचित्र के द्वारा समझा जा सकता है–

(ज्येष्ठचतुरस्र नाट्यमण्डप)

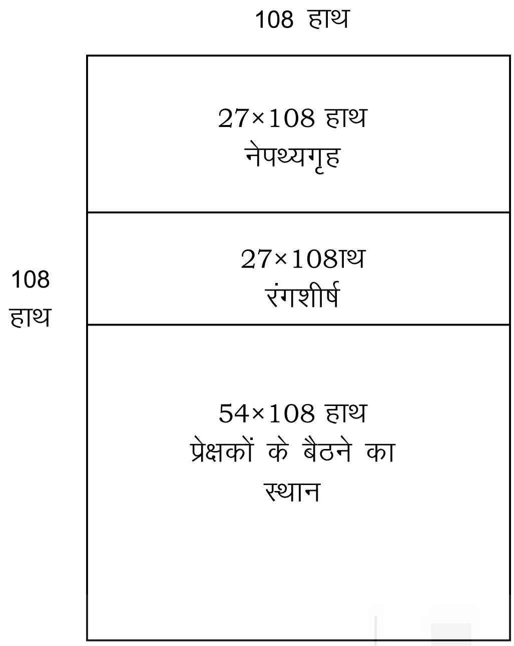

(मध्यमचतुरस्र नाट्यमण्डप)

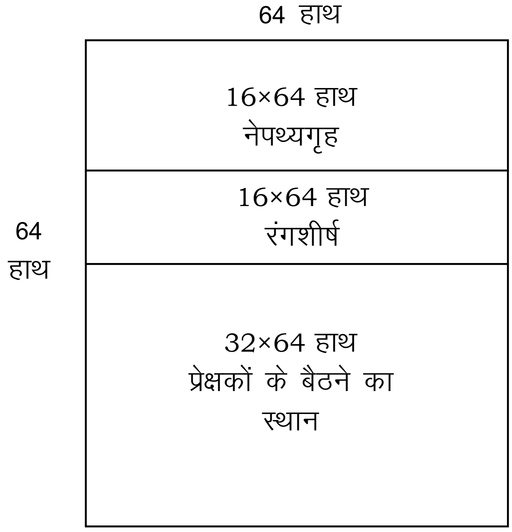

(अवरचतुरस्र नाट्यमण्डप)

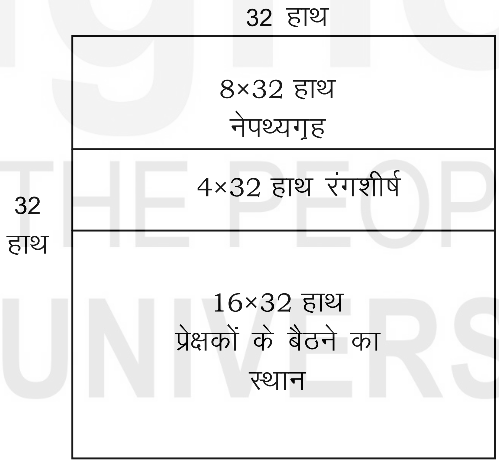

1.3.5 त्र्यस्रनाट्यमण्डप की परिभाषा एवं विशेषताएँ

तीन दिशाओं वाले नाट्यमण्डप को त्र्यस्र नाट्यमण्डप कहते हैं। यह नाट्यमण्डप आकार में त्रिकोण होता है– तिस्रः अश्रयः अस्मिन्निति त्र्यश्रः अर्थात् जिसके तीनों कोण त्रिभुजाकार बराबर हो उसे त्र्यश्च नाट्यमण्डप कहते हैं। इस नाट्यमण्डप की तीनों दिशाए बराबर होती हैं इसलिए इसे समत्रिबाहु नाट्यमण्डप भी कहा जा सकता है। इस नाट्यमण्डप को कनिष्ट नाट्यमण्डप भी कहा गया है (ना.शा. 2/26)। इसके भी तीन भेद होते हैं, जो परिमाण आधारित ही हैं– ज्येष्ठत्र्यस्र नाट्यमण्डप, मध्यमत्र्यस्र नाट्यमण्डप, अवरत्र्यस्र नाट्यमण्डप। यदि इसके परिमाण को देखा जाय तो ज्येष्ठत्र्यस्र नाट्यमण्डप की तीनों दिशाए 108–108 हाथ की होती है, मध्यमत्र्यस्र नाट्यमण्डप की तीनों दिशाएं 64–64 हाथ की तथा अवरत्र्यस्र नाट्यमण्डप की तीनों दिशाएं 32–32 हाथ की होती हैं, जिसे अद्योलिखित रेखाचित्र से समझा जा सकता है–

(ज्येष्ठत्र्यस्र नाट्यमण्डप)

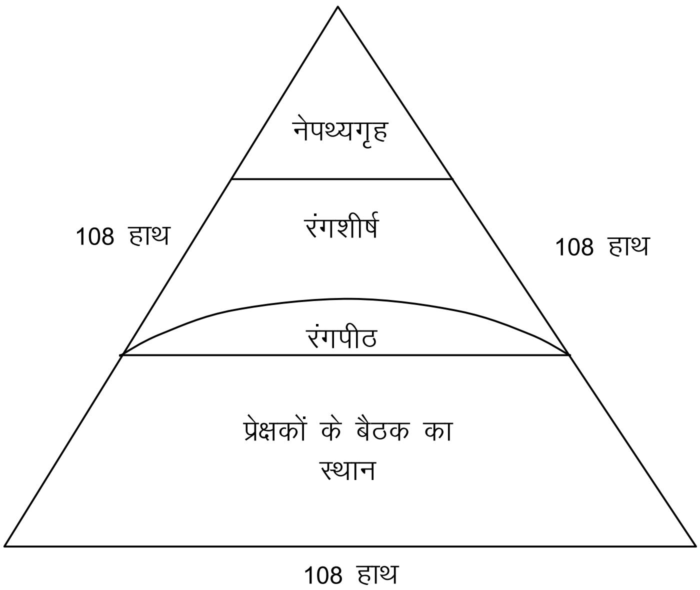

(मध्यमत्र्यस्र नाट्यमण्डप)

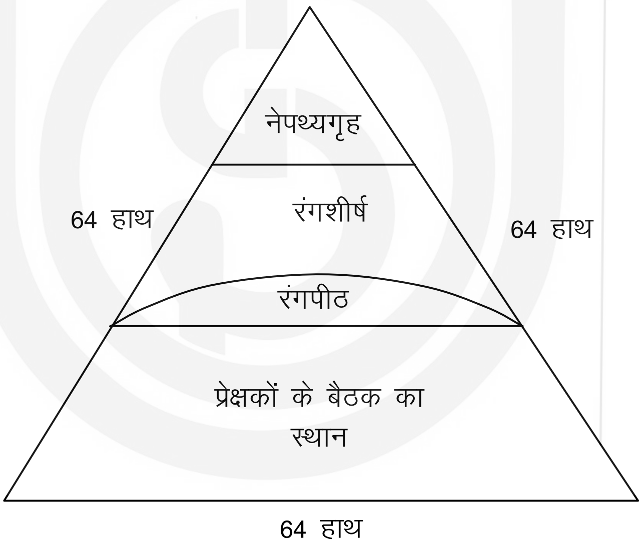

(अवरत्र्यस्र नाट्यमण्डप)

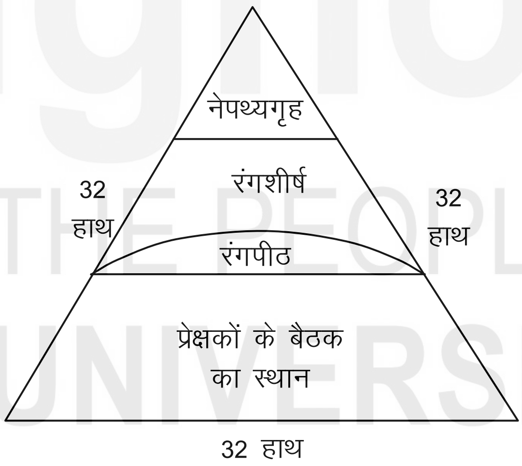

1.4 सारांश

रंगमंच (नाट्यमण्डप) के अन्तर्गत रंगमंच के प्रकार के रूप में विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र रंगमंच का आपने अध्ययन किया है। जिससे रंगमंच के विविध स्वरूप के साथ उसके परिमाण और विशेषताओं के विषय में अनेक तथ्य उपस्थित हुए हैं। इस उपस्थापन से रंगमंच का मंचीय विधान पूर्ण से प्रकाशित हुआ है। रंगमंच भारतभूमि का वह मनोविनोद का साधन है जिससे सहज ही सहृदय आनन्द सागर में डूबकी लगाने लगता है। फलस्वरूप यहाँ रंगमंच के प्रकार, आकार एवं विशेषताओं का वर्णन किया गया है। इस वर्णन का मुख्य आधार आचार्य भरत प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' और अभिनवगुप्त की अभिनवभारती है। विकृष्ट रंगमंच को आयताकार, चतुरस्र रंगमंच को वर्गाकार और त्र्यस्र रंगमंचों में विकृष्ट मध्यम रंगमंच को ही मंचन और दर्शन की दृष्टि से उत्तम माना गया है।

1.5 शब्दावली

विकृष्ट – जिसकी लम्बाई और चौड़ाई आपस में बराबर हो उसे विकृष्ट कहा जाता है।

चतुरस्र – जिसकी चारों दिशाओं में समान भुजा हो वह चतुरस्र होता है।

त्र्यस्र – तीन बराबर भुजाओं वाले कोण को त्र्यस्र कहा जाता है।

ज्येष्ठ – सबसे बड़े जो आकार प्रकार में विस्तृत हों वह ज्येष्ठ मण्डप कहलाता है।

कनिष्ठ – जो आकार प्रकार में सबसे छोटा हो वह कनिष्ठ मण्डप कहलाता है।

परिमाण – किसी वस्तु का आकार बतलाना ही परिमाण है।

प्रेक्षागृह – रंगमंच या नाट्यमण्डप को ही प्रेक्षागृह भी कहा जाता है।

1.4 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, सं. डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2015
2. नाट्यशास्त्रविश्वकोश, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1999
3. भरत और भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009
4. श्रीविष्णुधर्मोत्तरमहापुराण, टीकाकार आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
5. नाट्यशास्त्रीय मूलतत्त्वों की विकास परम्परा, सं. कुसुम भूरिया दत्ता, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2012
6. नाट्यानुशासन, रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदाससस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, 2008
7. अग्निपुराण का नाट्यदर्शन, डॉ. संजय कुमार, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2018
8. नाट्यम् अंक 80, (नाट्यशास्त्र विशेषांक), नाट्यपरिषद् संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मार्च–2017
9. संस्कृत हिन्दी कोश, वामनशिवरामआप्टे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016

1.5 बोध प्रश्न

1. रंगमंच के महत्त्व एवं निर्माण विधि का वर्णन कीजिए।
2. रंगमंच से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. रंगमंच के भेद को स्पष्ट करते हुए उसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
4. रंगमंच के परिमाण को स्पष्ट कीजिए।
5. रंगमंच की विशेषता एवं भेद को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 2 रंगमंच (नाट्यमण्डप) के प्रकार (भाग दो)

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 ज्येष्ठ, मध्यम और अवर नाट्यमण्डपों का स्वरूप

- 2.3.1 भरतसम्मत नाट्यमण्डप के भेद
- 2.3.2 अभिनवगुप्त सम्मत नाट्यमण्डप के भेद
- 2.3.3 रेवाप्रसाद द्विवेदी का नाट्यमण्डप विषयक अभिमत
- 2.3.4 वाह्य आदि नाट्यमण्डपों (गृहों) का परिचय

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.7 बोध प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आपको :

- रंगमंच (नाट्यमण्डप) प्रकार स्पष्ट हो सकेगा।
- रंगमंच (नाट्यमण्डप) के भेद–प्रभेद के सम्बन्ध में भ्रान्तियों का निराकरण हो सकेगा।
- रंगमंच के ज्येष्ठ, मध्यम और अवर (कनिष्ठ) भेदों का ज्ञान हो सकेगा।
- नाट्यशास्त्रीय आचार्यों के अनुसार रंगमंच के प्रकार का बोध हो सकेगा।
- अन्य पारम्परिक रंगमंच (नाट्यमण्डप) का भी ज्ञान हो सकेगा।

2.2 प्रस्तावना

नाट्यशास्त्रीय परम्परा में आकार के आधार पर रंगमंच (नाट्यमण्डप) का तीन भेद किया जाता है– ज्येष्ठ, मध्यम् और अवर (कनिष्ठ)। जिसमें मध्यम प्रकार के नाट्यमण्डप को अभिनय, श्रवण तथा दर्शन की दृष्टि से अत्यधिक उपयुक्त माना जाता है। इन त्रिविध रंगमंच (नाट्यमण्डप) को आचार्य भरत, आचार्य अभिनवगुप्त और आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी आदि ने अपनी मति के अनुसार व्यक्त किया है जिसे इस इकाई में व्यक्त किया जा रहा है।

2.3 ज्येष्ठ, मध्यम और अवर नाट्यमण्डपों का स्वरूप

आचार्य भरत आदि आचार्यों ने विभिन्न आकार–प्रकार के रंगमंच (नाट्यमण्डप) का विवरण प्रस्तुत किया है वे तीन प्रकार के होते हैं। जिनमें ज्येष्ठ रंगमंच (नाट्यमण्डप) देवताओं के लिए, मध्यम रंगमंच (नाट्यमण्डप) मनुष्यों (राजाओं) के लिए उपयोगी होता

है। कनिष्ट अर्थात् अवर नाट्यमण्डप साधारण प्रजाओं के लिए होता है। अभिनवगुप्त ने ज्येष्ठ प्रेक्षागृह को युद्ध–नियुद्ध, मार–काट, भगदड़, उल्कापात आदि दृश्यों वाले डिम आदि रूपकों के लिए उपयुक्त माना है। राजा आदि चरित्र प्रधान नाटकों के लिए मध्यम नाट्यमण्डप और साधारण लौकिक जीवन के विकृतियों को प्रदर्शित करने वाला भाण, प्रहसन आदि रूपकों को अभिनय के लिए अवर नाट्यमण्डप को उपयुक्त माना है।

नाट्यशास्त्र में विकृष्ट, चतुरस्र, त्र्यस्र नाट्यमण्डप को क्रमशः तीन भागों में विभाजित किया जाता है जिनका नाम ज्येष्ठ, मध्यम और अवर। इनमें ज्येष्ठ सबसे बड़ा, अवर सबसे छोटा तथा मध्यम दोनों का मध्यवर्ती होता है। कुछ विद्वान् आकार के आधार पर ज्येष्ठता आदि का निर्णय करते हैं और कुछ परिमाण के आधार पर। यदि आकार के आधार पर यह निर्णय किया जाय तो नाट्यमण्डप के तीन ही प्रकार होते हैं और यदि परिमाण के आधार पर निर्णय किया जाए तो हस्ताश्रित और दण्डाश्रित दोनों के आधार पर अट्ठारह प्रकार के नाट्यमण्डप हो जाते हैं। नाट्यशास्त्र में एक सौ आठ हाथ का नाट्यमण्डप ज्येष्ठ, चौसठ हाथ नाट्यमण्डप मध्यम और बत्तीस हाथ का अधम (कनिष्ठ) नाट्यमण्डप बताया गया है (ना.शा. 2/10)। यहाँ पर नाट्यमण्डपों के व्यावहारिक स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए भी कहा गया है–

देवानां तु भवेज्ज्येष्ठं नृपाणां मध्यमं भवेत्।
शेषाणां प्रकृतीनां तु कनीयः संविधीयते।। (ना.शा. 2/11)

अर्थात् देवताओं के लिए ज्येष्ठ नाट्यमण्डप होना चाहिए, राजाओं के लिए मध्यम तथा शेष प्रजाओं के लिए कनिष्ठ (अवर) नाट्यमण्डप का विधान किया गया है। इस सम्बन्ध में अभिनवगुप्त का मानना है कि देवता और असुर जिसमें नायक और प्रतिनायक हों ऐसे डिम आदि रूपकों के अभिनय के लिए 108 हाथ वाला विकृष्ट अर्थात् ज्येष्ठ नाट्यमण्डप होना चाहिए। क्योंकि डिम में आरभटी वृत्ति की प्रधानता होती है। इसलिए उसका अभिनय मध्यम या कनिष्ठ नाट्यमण्डप में नहीं हो सकता है। आरभटी वृत्ति प्रधान डिम आदि में लम्बे–चौड़े रंगमंच की आवश्यकता होने से मृदंग आदि मढ़े हुए वाद्यों की अधिकता होने से और परिक्रमण आदि में अधिक ऊँचे एवं अधिक लम्बे स्थान की आवश्यकता होती है। किन्तु कुछ अन्य व्याख्याकारों का मानना है कि जिस मण्डप में देवतादि प्रेक्षक हो उसे ज्येष्ठ नाट्य मण्डप कहना चाहिए। लेकिन अभिनवगुप्त इससे सहमत नहीं है। प्रेक्षक रूप में देवतादि की संख्या परिमित होने के कारण प्रयोज्य नहीं है। वस्तुतः मण्डप आदि का विधान दशरूपक आदि को ध्यान में रखकर ही निर्मित किया जाता है। इस कारण से प्रेक्षक की दृष्टि से मण्डप की व्याख्या करना उचित नहीं होगा। इन तीनों प्रेक्षागृहों में मध्यम प्रेक्षागृह को प्रशस्त माना गया है जिसके सम्बन्ध में कहा गया है–

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां प्रशस्तं मध्यमं स्मृतम्।
तत्र पाठ्यं च गेयं च सुखश्राव्यतरं भवेत्।। (ना.श. 2/12)

अर्थात् सभी प्रकार के प्रेक्षागृहों में मध्यम प्रेक्षागृह को प्रशस्त यानि सर्वोत्तम कहा गया है। क्योंकि पाठ्य (सम्वाद) तथा गेय (संगीत) को इसमें सुखपूर्वक सुना जा सकता है। अवर नाट्यमण्डप में भाण प्रहसन आदि का अभिनय होता है। यहाँ पर मनुष्यों के नाट्यमण्डप के सम्बन्ध में भी कहा गया है कि इनके लिए प्रेक्षागृह की लम्बाई 64 हाथ और चौड़ाई 32 हाथ होनी चाहिए। जिससे इसी नाट्यमण्डप की उपयुक्तता सिद्ध

होती है। यह नाट्यमण्डप राजा आदि के चरित्रों से सम्बन्धित होता है। जिसके अभिनय में मध्यम परिमाण वाला नाट्यमण्डप उपयुक्त है। नाट्य निर्माताओं को अधिक बड़ा या छोटा मण्डप नहीं बनाना चाहिए क्योंकि अधिक बड़े नाट्य मण्डप में नाट्य अस्पष्ट हो जाता है। अत्यन्त बड़े तथा अत्यन्त छोटे नाट्यमण्डप में या तो आवाज बहुत तीव्र सुनाई देती है या सुनाई ही नहीं देती है। 32 हाथ वाले नाट्यमण्डप को अवर नाट्यमण्डप कहा जाता है। लेकिन इसका सबसे दोष यह होता है कि कम स्थान के कारण पाठ्य फैलने योग्य अवकाश न होने से यह विस्वर हो जाता है।

2.3.1 भरतसम्मत नाट्यमण्डप के भेद

आचार्य भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में 'नाट्यशास्त्र' सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिनय के लिए प्रेक्षागृह तीन प्रकार का होता है– विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र। ये तीनों नाट्यमण्डप ज्येष्ठ, मध्यम् और अवर (कनिष्ठ) कहे जाते हैं। इनमें ज्येष्ठ नाट्यमण्डप देवताओं के लिए होता है जिसकी लम्बाई एक सौ आठ (108) हाथ की होती है। मध्यम नाट्यमण्डप चौसठ (64) हाथ का होता है। अवर नाट्यमण्डप जिसे त्रिभुजाकार नाट्यमण्डप कहा जाता है वह बत्तीस (32) हाथ का होता है। इस प्रकार भरत सम्मत नाट्यमण्डप तीन प्रकार के ही होते है जिसमें इन तीनों नाट्यमण्डपों में मध्यम आकार वाले प्रेक्षागृह को सर्वोत्तम माना गया है क्यों मध्यम प्रेक्षागृह में संवाद, गीत आदि स्पष्टतया सुनाई देते हैं। आचार्य भरत के अनुसार विकृष्ट (आयताकार) मध्यम प्रेक्षागृह चौसठ (64) हाथ लम्बा और बत्तीस (32) हाथ चौड़ा होता है। आचार्य के भरत के अनुसार विकृष्ट आयताकार मध्यम नाट्यमण्डप इस प्रकार का है –

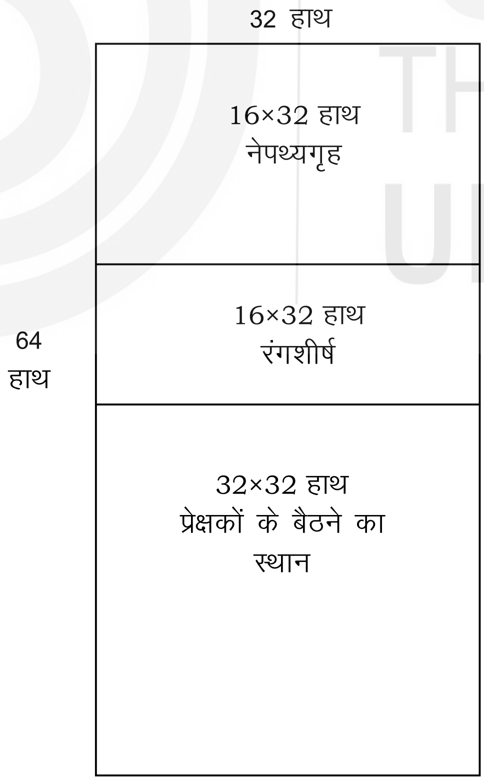

2.3.2 अभिनवगुप्त सम्मत नाट्यमण्डप के भेद

नाट्यशास्त्र आधारित अभिनवभारती के लेखक आचार्य अभिनवगुप्त भी नाट्यमण्डपों की संख्या पर विचार किये हैं। उनके अनुसार प्रथमतः नाट्यमण्डप विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र भेद से तीन प्रकार का होता है। पुनः तीनों का तीन–तीन विभाजन ज्येष्ठ,

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

मध्यम और अवर के रूप में किया जाता है। इस प्रकार नाट्यमण्डपों की संख्या नौ (9) हो जाती है। पुनः हस्त और दण्ड भेद से नाट्यमण्डप की संख्या अट्ठारह (18) हो जाती है। कुछ आधुनिक विद्वानों ने इस व्याख्या पर यह कहकर आपत्ति उठाई है कि दण्ड प्रमाण से नौ (9) के अतिरिक्त नाट्यमण्डपों की कल्पना हस्तप्रमाण वाली नाट्यमण्डपों से आकार में ढाई गुना बड़ा होगा, जो आचार्य भरत सम्मत नहीं है। इस सम्बन्ध में अभिनवगुप्त ने कहा है कि अतिरिक्त (9) नौ नाट्यमण्डपों की स्वीकृति सर्वसंभाव्यता के सिद्धान्त के आधार पर की जानी चाहिए। अर्थात् कोई प्रयोग के रूप में कुछ हजार दर्शकों के बैठने के लिए उपयुक्त बड़ा नाट्यमण्डप बनाना चाहे तो दण्ड के नाप से बनाया जा सकता है। अनन्तर अभिनवगुप्त ने स्पष्ट कहा है कि अट्ठारह भेदों वाला नाट्यमण्डप में अधिकांश व्यवहार की दृष्टि से अनुपयोगी हैं। वे कहते हैं– ते चाद्यत्वेऽनुपयोगनिः, तथापि सम्प्रदायच्छिेदार्थं निर्दिश्यन्ते’। अभिनवगुप्त ने रंगपीठ और रंगशीर्ष दोनों का पृथक–पृथक प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार विकृष्ट (आयताकार), मध्यम परिमाण वाले नाट्यमण्डप की रचना चौसठ (64) हाथ लम्बी और बत्तीस (32) हाथ चौड़ी होनी चाहिए। प्रथम रंगभूमि को दो भागों में विभाजित करें। उनमें 32×32 हाथ के एक भाग में प्रेक्षकों के बैठने की व्यवस्था करें और 32×32 हाथ वाले दूसरे भाग के दो बराबर–बराबर भागों में विभाजित करें। उनमें ऊपर के भाग में नेपथ्य बनाये और बीच वाले भाग 16×32 हाथ के भी दो खण्ड करें। उनमें 8×32 हाथ के एक भाग में रंगपीठ और दूसरे भाग में रंगशीर्ष का निर्माण करें। इस प्रकार अभिनवगुप्त विकृष्ट मध्यम नाट्यमण्डप की कल्पना की है।

आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार विकृष्ट मध्यम नाट्यमण्डप का स्वरूप–

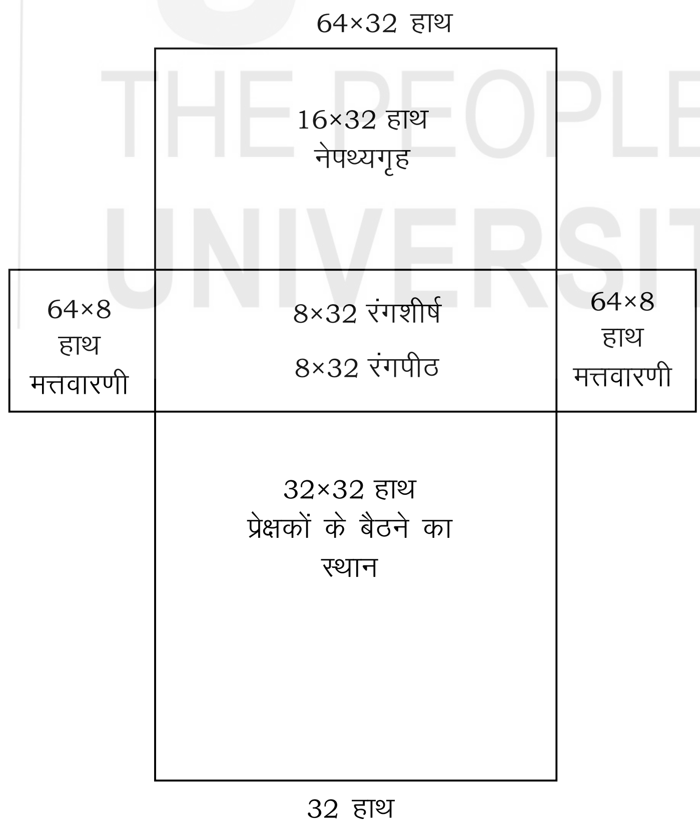

2.3.3 रेवाप्रसाद द्विवेदी का नाट्यमण्डप विषयक अभिमत

आधुनिक नाट्याचार्यों में प्रमुख आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी के द्वारा भी नाट्यमण्डप या नाट्यगृह के सम्बन्ध में ‘नाट्यानुशासनम्’ के प्रथम उन्मेष में विचार किया गया है।

जिसमें उन्होंने बतलाया है कि भरत आदि महर्षियों ने रंगपीठ के दो भेद बतलाए हैं– ब्राह्म और वैष्णव। ब्राह्म पीठ केवल वेदिका से सम्बन्धित होती है इसमें न स्तम्भ, न द्वार, न शीर्ष और न मण्डप होता है लेकिन वैष्णव पीठ भित्ति और मण्डप से युक्त होता है जिसका रेवाप्रसाद द्विवेदी मण्डप और आकार की दृष्टि से तीन भेद करते हैं–

मण्डपाकारभेदेन भेदा अस्य त्रयः स्मृताः।
विकृष्टं चतुरस्रं च त्र्यस्रञ्चेति यथाक्रमम्।। (नाट्यानुशासन, 1/15)

अर्थात् मण्डप और आकार के भेद से इसके तीन भेद माने गये हैं जो क्रमशः हैं– विकृष्ट चतुरस्र और त्र्यस्र। इनके सम्बन्ध में आचार्य रेवाप्रसाद बतलाते हैं कि वस्तुतः विकृष्ट नाम से इसे इसलिए पुकारा जाता है कि इसकी चौड़ाई से लम्बाई दुगनी होती है। लम्बाई और चौड़ाई यदि बराकर हो तो उसे चतुरस्र कहा जाता है। चतुरस्र ही त्र्यस्र बन जाता है यदि पिछले भाग में चौड़ाई न रखी जाय। यह जो वैष्णव पीठ है यह विष्णु की डगों के समान है। यहाँ के तीन डग से तात्पर्य यह है कि भगवान् विष्णु तीन डग से जिस प्रकार तीन लोक में व्याप्त हो गये हैं उसी प्रकार रंगमंच (मण्डप) भी तीनों लोकों में व्याप्त है। इससे सभी लोग रंजन करते हैं।

रेवाप्रसाद द्विवेदी ने भी पुनः विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र नाट्यमण्डप का प्रमाण के आधार पर तीन भेद बतलाये हैं–

त्रैविध्यं पुनरप्यस्य त्रिविधस्यादि जायते।
भेदैस्त्रिभिः प्रमाणां ज्येष्ठ मध्याऽधमाभिधैः।। (नाट्यानुशासन 1/18)

अर्थात् तीनों प्रकार के पीठ का प्रमाणों के आधार पर ज्येष्ठ, मध्य और अधम (अवर) तीन प्रकार हो जाते हैं। ज्येष्ठ प्रमाण में यह पूरा त्रैलोक्य ही रंग मण्डप को व्याप्त कर सकता है। जिसकी लम्बाई 108 हाथ और चौड़ाई उसकी आधी होती है। वे रंगशाला में उतनी लम्बाई और चौड़ाई की अपेक्षा करते हैं जितने में दृश्य और श्रव्य की गति बनी रहे। रंगपीठ के निर्माण के विषय में रेवाप्रसाद द्विवेदी का मानना है–

द्विगुणं त्रिगुणं पीठं चतुर्गणमथापि वा।
हस्तैः क्रियेत दण्डैर्वा प्रयोगो हीयते च चेत्।। (नाट्यानुशासनम्, 1/22)

अर्थात् रंगपीठ को दुगना बड़ा भी बनाया जा सकता है और तिगुना तथा चौगुना भी हस्तों के आधार पर या दण्डों के आधार पर बनाने में कोई हानि नहीं है। उन्होंने प्रेक्षकों के निवेश रंगपीठ और नेपथ्यगृह को ही नाट्यमण्डप कहा है। नाट्यशाला रम्य से रम्य होनी चाहिए। इनके द्वारा भी मध्यम नाट्यमण्डप को ही उपयुक्त माना गया है। नाट्यमण्डप की समुचित व्यवस्था के लिए ध्वनि यन्त्रों और विद्युत व्यवस्था होनी चाहिए। साथ ही वास्तु कला और स्थापत्य कला का प्रदर्शन भी नाट्यमण्डप में अपेक्षित है। इन सबके बावजूद रेवाप्रसाद द्विवेदी प्रयोग पर ही अधिक बल देते हैं। वे कहते हैं–

भित्तिस्तम्भ द्वार–पीठ–नेपथ्य–प्रेक्षणादिकम्।
गौणमेव प्रधानत्वं प्रयोगस्यैव सर्वथा।। (नाट्यानुशासन, 1/40)

अर्थात् भित्ति, स्तम्भ, द्वार, पीठ, नेपथ्य, प्रेक्षक निवेश आदि सब गौण हैं। प्रधान तो केवल प्रयोग ही होता है। वे नाट्यमण्डप के सम्बन्ध में कहते हैं–

प्रेक्षकाणां निवेशश्च रंगपीठं तथैव च।
नेपथ्यगृहकं चेति त्रयं वै नाट्यमण्डपः।। (नाट्यानुशासन, 1/45)

प्रेक्षकों का निवेश, रंगपीठ और नेपथ्यगृह इन तीन का नाम ही नाट्यमण्डप है। इस प्रकार आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी अभिमत नाट्यमण्डप का स्वरूप इस प्रकार निर्मित होगा–

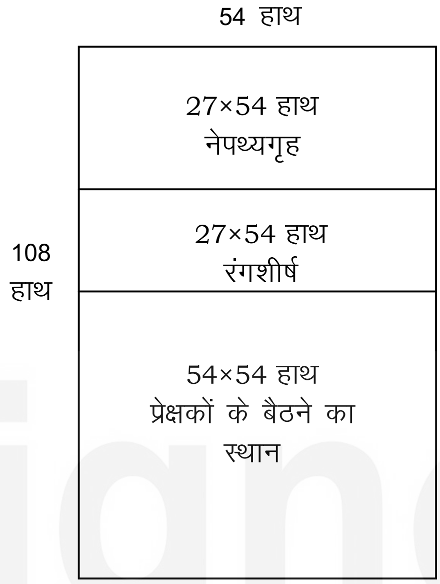

(ज्येष्ठविकृष्ट नाट्यमण्डप)

अन्य नाट्याचार्यों की भांति इन्होंने भी रंगशीर्ष, स्तम्भ भित्ति, वेदिका पेटी आदि का उल्लेख अपने नाट्यमण्डप में किया है।

2.3.4 वाह्य आदि नाट्यमण्डपों (गृहों) का परिचय

यदि हम वाह्य नाट्यमण्डप पर विचार करें तो ध्यान में आता है कि ऐसा नाट्य स्थल जो खुले आसमान के नीचे या अन्य स्थलों पर मंचन कार्य के उपयोग में लाया जाता है। वह वाह्य नाट्यमण्डप की श्रेणी में आता है। यह भी कहा जा सकता है कि जो मंचन के साथ अन्य सांस्कृतिक गतिविधि के काम में भी लाया जाता है। नाट्योद्भव के आरम्भिक काल में ये नाट्यमण्डप राजभवनों की संगीतशाला और नृत्यशालाओं के रूप में सामने आते हैं। मंदिरों को भी नाट्यमंचन के लिए प्रयोग में लाया जाता रहा है। प्राचीन ग्रीक रंगमंच की व्यवस्था खुले चारों ओर से पहाड़ियों से घिरे स्थान में होती थी। रंगमंच का स्थान अत्यधिक बड़ा होता था। क्योंकि कोरस (समूहगान) की मण्डली को गायन के साथ–साथ गति के लिए जगह चाहिए थी। 465 ई.पू. के आसपास ऐसी रंगशालाओं का उपयोग होने लगा जो देवालय या राजप्रसाद से जुड़ी होती थी। रंगमंच तथा प्रेक्षागृह इनमें खुले अहाते में ही होता था पर दीवार रंगमंच की पृष्ठभूमि के लिए मिल जाती थी तथा इसी दीवार से सटाकर बाद में एक प्रसाधन कक्ष भी बनाया जाने लगा और पुनः इसका उपयोग दृश्यबन्धों के लिए होने लगा। इस प्रकार के नाट्यमण्डपों का व्यावहार भारत में भी रहा है 'विधपु' में देवालय की रंगशाला मिलती है। रोम में पत्थर से स्थायी नाट्यगृह बनाने की परम्परा दूसरी शताब्दी ई. पूर्व में आरम्भ हुई थी। मध्यकाल मं चर्च का उपयोग भी नाट्यमण्डप के रूप में किया जाने लगा था तथा रंगमंच पर पर्दे का उपयोग आरम्भ हुआ। गुफाओं को भी नाट्यमण्डप के उपयोग में लाया जाता रहा है। जोगीमारा गुफा के लेख से

यह पता चलता है कि वह गुफा सुतनुका नाम की देवदासी ने नर्तकी अथवा नटियों के लिए बनवायी थी। सीतावेंगा गुफा नाट्यमण्डप की भांति ही बनी हुई है। इसके समक्ष सीढ़ी की भांति प्रेक्षागृह के भी अवशेष विद्यमान है। भारत में गुफाएं जनमनोरंजन के काम में तो बहुत प्राचीन समय आती रही है जैसे कि अश्घोष और कालिदास की कृतियों से भी संकेत मिलता है। कभी–कभी ऊँचे स्थान, समतल मैदान, पर्वतीय सुरक्षित क्षेत्रों को भी मंचन के कार्य में लाया जाता है। वृत्त नाट्यमण्डप, खुला नाट्यमण्डप जिसे ओपेन थियटर के नाम से भी जाना जाता है। जो मंचन की दृष्टि से सुविधाजनक भी होता है। इसी तरह और भी अनेक वाह्य नाट्यमण्डप के रूप हो सकते हैं। इन सभी नाट्यमण्डपों को बहिरस्र नाट्यमण्डप भी कहते हैं।

2.4 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत भारतीय नाट्य परम्परा के मान्य आचार्य भरत, अभिनवगुप्त और रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्दिष्ट रंगमंच के स्वरूप के विषय में प्रतिपादन किया गया है। ज्येष्ठ, मध्यम और अवर नाट्य मण्डप स्वरूप के साथ विभिन्न आचार्यों द्वारा रंगमंच भेदों की भी चर्चा की गयी है। जिसमें आचार्य भरत द्वारा तीन प्रकार के रंगमंच अभिनवगुप्त के अनुसार नौ तथा अट्ठारह एवं रेवा प्रसाद द्विवेदी द्वारा नौ प्रकार के रंगमंच को स्पष्ट किया गया है। यहाँ बाह्य आदि नाट्यमण्डपों के रूप में देवालय, राजप्रसाद गुफा, पहाड़ी नाट्यमण्डप का वर्णन किया गया है जिससे नाट्यमण्डप के विविध स्वरूप सामने आते हैं। इस प्रकार इसके अध्ययन से नाट्यमण्डप के प्राचीन महत्त्व के साथ अर्वाचीन महत्त्व का भी बोध होगा।

2.5 शब्दावली

प्रतिनायक – नायक के विपरीत रहने वाला प्रतिनायक होता है।

अवर – आकार, प्रकार व आयु में छोटा को अवर कहा जाता है।

वैष्णव – विष्णु से सम्बन्धित को वैष्णव कहा जाता है।

कोरस – समूह गान को कोरस कहा जाता है।

नर्तकी – नर्तन करने वाली नर्तकी कहलाती है। यह नर्तक का स्त्रीलिंग है। नर्तकी का उल्लेख नाट्यशास्त्र में रंग दैवतपूज के प्रसंग में किया गया है। इस पूजन के समय होम के लिए दीप्त अग्नि से ही उल्काएं जलायी जाती हैं। जिनसे राजा तथा नर्तकी की दीप्ति का अभिवर्धन होता है। (नाट्यशास्त्र 3/83)

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, सं. डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2015
2. नाट्यशास्त्रविश्वकोश, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1999
3. भरत और भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009

4. श्रीविष्णुधर्मोत्तरमहापुराण, टीकाकार आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
5. नाट्यशास्त्रीय मूलतत्त्वों की विकास परम्परा, सं. कुसुम भूरिया दत्ता, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2012
6. नाट्यानुशासन, रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदाससस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, 2008
7. अग्निपुराण का नाट्यदर्शन, डॉ. संजय कुमार, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2018
8. नाट्यम् अंक 80, (नाट्यशास्त्र विशेषांक), नाट्यपरिषद् संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मार्च–2017
9. संस्कृत हिन्दी कोश, वामनशिवरामआप्टे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016

2.5 बोध प्रश्न

1. आकार के आधार पर रंगमंच के प्रकार को स्पष्ट कीजिए।
2. मध्यम रंगमंच (नाट्यमण्डप) की विशेषता एवं महत्त्व का वर्णन कीजिए।
3. आचार्य भरत सम्मत नाट्यमण्डप का वर्णन कीजिए।
4. आचार्य अभिनवगुप्त सम्मत रंगमंच (नाट्यमण्डप) का वर्णन कीजिए।
5. आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी के अनुसार रंगमंच (नाट्यमण्डप) विषयक अभिमत को स्पष्ट कीजिए।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 3 रंगमंच (नाट्यमण्डप) निर्माण विधि (भाग एक)

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 नाट्यमण्डप निर्माण विधि

3.3.1 भूमिशोधन

3.3.2 विभाजन

3.3.3 स्थापन

3.3.4 भित्तिकर्म

3.3.5 स्तम्भ कर्म

3.3.6 स्तम्भों के देवता

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.7 बोध प्रश्न

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आपको :

- रंगमंच (नाट्यमण्डप) के निर्माण विधि से उसके अपेक्षित सावधानियों का ज्ञान हो सकेगा।
- रंगमंच के निर्माण विधि का बोध हो सकेगा।
- रंगमंच के विविध पक्षों के विषय में जानकारी हो सकेगी।
- रंगमंच के निर्माण विधि में अपेक्षित सावधानियों के विषय स्पष्ट हो सकेंगे।
- विषयगत सामग्री के रूप में अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों का भी प्रस्तुतिकरण हो सकेगा।

3.2 प्रस्तावना

रंगमंच (नाट्यमण्डप) का निर्माण बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। इसलिए उसके निर्माण में बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। यथा रंगमंच का निर्माण कहाँ, कैसे और किस रूप में किया जाय कि वह अभिनय एवं दर्शन दोनों के अनुकूल हो। जिसके लिए भूमिशोधन, विभाजन, स्थापन, भित्तिकर्म, स्तम्भ, देवता, आदि का विधान किया जाता है। इनके विधिवत परिपालन से ही रंगमंच के वैशिष्ट का बोध होता है। इसलिए नाट्यशास्त्री ग्रन्थों के आधार पर उपयुक्त विषय को इस इकाई के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.3 नाट्यमण्डप निर्माण विधि

हमारे यह नाट्यमण्डप निर्माण विधि को बहुत असाधारण कार्य के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका निर्माण कार्य शास्त्रीय के साथ सांस्कृतिक भी हैं नाट्याचार्य नाट्यमण्डप निर्माण विधि को सामाजिक की ही दृष्टि से स्थापित करता है क्योंकि यह अभिनेताओं के साथ–साथ सामाजिक से ही विशेष रूप से सम्बन्धित है। इसलिए इसके निर्माण विधि के विषय में आचार्य भरत कहते हैं–

श्रूयतां तद्यथा यत्र कर्त्तव्यो नाट्यमण्डपः।
तस्य वास्तु च पूजा च यथा योज्या प्रयत्नतः।। (ना.शा. 2/6)

अर्थात् जिस प्रकार से नाट्य मण्डप का निर्माण करना चाहिए और उसके वास्तु यानि नाट्यगृह के भूमि आकार परिमाण आदि तथा पूजा प्रयत्नपूर्वक जैसा करना चाहिए उसे सुनिये। भारतीय परम्परा के अनुसार प्रत्येक कार्य में पूजा विधि अनिवार्य कर्म के रूप मानी जाती है जिसका निर्वाह नाट्यमण्डप निर्माण में भी किया जाता है। पूजा के अनन्तर वे निर्माण विधि का उपदेश देंगे। कहने का भाव यह है कि आचार्य भरत नाट्यगृह निर्माण विधि को बताने जा रहे हैं। उसी का क्रमशः विधान किया जा रहा है।

3.3.1 भूमिशोधन

नाट्यमण्डप का निर्माण जिस भूमि पर होता है उसका समुचित देखरेख आवश्यक है इसलिए नाट्यमण्डप निर्माण के लिए भूमि शोधन अनिवार्य कर्म है। आचार्यभरत ने नाट्य निर्माण के सम्बन्ध में सर्वप्रथम भूमिशोधन का उल्लेख करते हुए कहा है–

भूमेर्विभागं पूर्वं तु परीक्षेत प्रयोजकः।
ततो वास्तु प्रमाणेन प्रारभेत शुभेच्छया।। (ना.शा. 2/29)

अर्थात् नाट्यकर्ता को सर्वप्रथम भूमिखण्ड की परीक्षा (विभाग) करनी चाहिए। तदनन्तर वास्तुशास्त्र के प्रमाण के अनुसार शुभ की इच्छा से वास्तु का निर्माण कार्य करें। यहाँ विभाग पद से भूमि की हेयता और उपादेयता का ग्रहण होता है। कहने का भाव यह है कि कौन सी भूमि त्याज्य है और कौन सी भूमि ग्राह्य करने योग्य है। इसका विचार करके ही नाट्यमण्डप का निर्माण कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। भूमिशोधन के विषय में नाट्यशास्त्र में कहा गया है–

प्रथमं शोधनं कृत्वा लाङ्गलेन समुत्कृषेत्।
अस्थिकीलकपालानि तृणगुल्मांश्च शोधयेत।। (ना.शा. 2/31)

अर्थात् सबसे पहले भूमिशोधन करके हल से जोते और हड्डी, कील, खपड़ एवं घास–फूसों को निकाल दे। शोधन से तात्पर्य नाट्यमण्डप स्थल की साफ–सफाई से है। नाट्यमण्डप का स्थल स्वच्छ होना चाहिए। यह मानुषी और दैवी दोनों कार्य हैं इसलिए नाट्यमण्डप का स्थान सब प्रकार से उत्तम होना चाहिए।

3.3.2 विभाजन

आचार्य भरत नाट्यमण्डप निर्माण के क्रम में भूमि विभाजन की भी बात करते हैं। किस भूमि पर नाट्यमण्डप को बनाना उचित होगा उसका ठीक प्रकार से निर्धारण करना

भूमि विभाजन कहलाता है। जिसके सम्बन्ध में 'नाट्यशास्त्र' में कहा गया है–

समा स्थिरा तु कठिना कृष्णा गौरी च या भवेत्।
भूमिस्तत्रैव कर्त्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः।। (ना.शा. 2/30)

अर्थात् जो भूमि समतल, स्थिर, कठोर, काली अथवा गौर वर्ण की उसी भूमि पर नाट्यगृह–निर्माताओं को नाट्यमण्डप बनाना चाहिए। यहाँ समा पद का आशय स्वभाव में अधिक ऊँची या अधिक नीची न होना है। स्थिर का अर्थ अचल स्वभाव वाला है। कठिना का अर्थ है जो भूमि ऊसर न हो। कृष्णा भूमि गौरा च पद वा (अथवा) अर्थ में प्रयुक्त है। दूसरे लोग इसका अर्थ तो काली एवं गौरी मिश्रित भूमि को करते हैं। कर्त्तव्यः पद का अर्थ करने योग्य बताया गया है।

3.3.3 स्थापन

नाट्यशास्त्र में नाट्यमण्डप की स्थापन विधि भी बताया गया है जिसका उद्देश्य नाट्यमण्डप के उद्देश्य और निर्विघ्न कार्य समाप्ति से है। यहाँ बताया गया है कि शुभ नक्षत्रों के योग में ही नाट्यमण्डप की स्थापना करनी चाहिए। शंख, दुन्दुभि के घोष के साथ मृदंग एवं पणव आदि सभी प्रकार के बाजों को बजाते हुए नाट्यमण्डप आधारशिला की स्थापना करनी चाहिए। साथ ही आचार्य भरत मुनि कहते हैं–

सर्वातोद्यैः प्रणुदितैः स्थापनं कार्यमेव तु।
उत्सार्याणि त्वनिष्टानि पाषण्डयाश्रमिणवस्था।। (ना.शा. 2/43)

अर्थात् नाट्यमण्डप स्थापना के समय अनिष्टकारी वस्तु पाखण्डियों, सन्यासियों, गेरुआ वस्त्रधारियों और लूले–लंगड़े लोगों को दूर भगा देना चाहिए। पुनः आचार्य भरत कहते हैं कि रात्रि में नाना प्रकार के भोजनों से युक्त तथा गन्ध, पुष्प, फल आदि से युक्त दशों दिशाओं में बलि देनी चाहिए। पूर्व दिशा में सफेद अन्न से युक्त, दक्षिण में नीले रंग का अन्न, पश्चिम में पीला अन्न और उत्तर दिशा में लाल रंग के अन्न की बलि देनी चाहिए। जिस दिशा में जिस प्रकार के देवता की कल्पना की गई है उस दिशा में उसी प्रकार की बलि मन्त्रों के साथ देनी चाहिए। साथ ही नाट्यमण्डप की स्थापना के समय ब्राह्मणों को घृत मुक्त पायस (खीर) और राजा को मधुपर्क तथा नाट्यकर्त्ताओं को गुड़युक्त चावल अर्थात् मीठा चावल खिलाना चाहिए। विद्वानों के द्वारा मूल नक्षत्र में अनुकूल मुहूर्त, तिथि एवं शुभकरण में नाट्यमण्डप की स्थापना करनी चाहिए। यह सभी कार्य नाट्य मण्डप निर्माण में विघ्न विघातक के रूप में स्वीकार किये जाते हैं।

3.3.4 भित्तिकर्म

नाट्यमण्डप का मुख्य आधार भित्ति ही होती है। इसी भित्ति में स्तम्भ, नागदन्त, वातायन तथा द्वार आदि की रचना होती है। जिसके निर्माण के विषय में नाट्यशास्त्र में कहा गया है–

एवं तु स्थापनं कृत्वा भित्तिकर्म प्रयोजयेत्। (ना.शा. 2/49)

अर्थात् नाट्यमण्डप की स्थापना के बाद भित्तिकर्म करना चाहिए। भित्ति ऐसी हो जिसमें वातायन छोटे हो। आचार्य भरत ने भित्ति प्रसाधन का अत्यन्त कलात्मक और परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया है। भित्ति कर्म के अन्तर्गत ही भित्ति लेप, सुधाकर्म भी आता है। अभिनवगुप्त के मत में भित्ति लेप का कार्य शंख, बालू और सितुहा आदि के चूर्ण

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

से होना चाहिए। नाट्यशास्त्र में यह भी बताया गया है कि नाट्यमण्डप की भित्ति चारों ओर से श्लिष्ट ईटों से बनी हो।

3.3.5 स्तम्भ कर्म

आचार्य भरत ने दृढ़ नाट्यमण्डपों की रचना के लिए भित्तियों के साथ स्तम्भों की स्थापना एवं रचना कर्म को स्पष्ट किया है। उन्होंने बताया कि स्तम्भ की स्थापना शुभ समय में ही करना चाहिए–

तिथिनक्षत्रयोगेन शुभेन करणेन च।
स्तम्भानां स्थापनं कार्यं रोहिण्या श्रवणेन।। (ना.शा. 2/50–51)

अर्थात् शुभतिथि नक्षत्र एवं करण का योग होने पर रोहिणी अथवा श्रवण नक्षत्र में स्तम्भों की स्थापना करनी चाहिए। स्तंभ स्थापन की विधि प्रसंग में चारों वर्णों के स्तम्भों के मूल में स्वर्ण, रजत, ताम्र और लौह आदि धातुओं के रखने का विधान है। भारतीय परम्परा किसी भी कार्य के लिए शुभ समय का अत्यधिक महत्त्व होता है। एतदर्थ यहाँ स्तम्भ कर्म में भी रोहिणी अथवा श्रवण नक्षत को उपयुक्त माना गया है। जिसका एक वैज्ञानिक कारण भी है कि इस नक्षत्रों में वातावरण नाट्यमण्डप कर्म के अनुकूल होता है। नाट्यमण्डपों के स्तंभों की संख्या भी बतलाई गयी है। आचार्य भरत के अनुसार चतुरस्र नाट्यमण्डप के लिए केवल 24 स्तंभों की आवश्यकता होती है जिनमें दस स्तंभ तो प्रेक्षागृह में सोपानाकृति आसनों के बाहर होंगे। शेष छः स्तंभ पूर्व स्थापित स्तंभों से चार–चार हाथ के अन्तर पर दक्षिण और उत्तर की ओर होने चाहिए। इन सोलह स्तंभों के अतिरिक्त शेष आठ स्तंभों की स्थापना भी स्थापना करनी चाहिए जिन पर आठ हाथ के स्तंभ रखे हों। आचार्य भरत के अतिरिक्त अभिनवगुप्त, शंकुक भट्टलोल्लट आदि भी स्तम्भ संख्या एवं रचना विधान को प्रस्तुत किये हैं। स्तंभ स्थापना के समय अनेक प्रकार की पूजा पद्धति तथा दान की भी बात कही गयी है–

रत्नदानैः सगोदानैर्वस्त्रदानैरनल्पकैः।
ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा तु स्तम्भानुत्थापयेत्ततः।। (ना.शा. 2/61–62)

अर्थात् पर्याप्त मात्रा में रत्नदान, गोदान और वस्त्रदान के द्वारा ब्राह्मणों को तृप्त करके तब स्तम्भों का उत्थापन करें यानि खड़ा करें। स्तंभ स्थापना में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र के कार्य भी निर्धारित किया गया है। उत्थापन के समय स्तम्भों को अचल, कम्पन रहित और अविचलित होना चाहिए क्योंकि स्तंभों के उत्थापन में ये दोष कहे गये हैं। स्तम्भ के चलन अर्थात् खिसक जाने पर अनावृष्टि होती है उसी स्थान पर घूम जाने से मृत्युभय होता है और कम्पन होने पर शत्रुपक्ष से भयंकर भय होता है। इन दोषों से रहित शिव अर्थात् मंगलकारी स्तम्भ खड़ा करें। स्तंभ का निर्माण शिल्पशास्त्र को जानने वाले के द्वारा ही होना चाहिए। स्तंभ की रचना सूर्योदय के समय उत्तम मानी गयी है। स्तंभों के प्रसाधान के सम्बन्ध में अभिनवगुप्त का मानना है कि ये स्तंभ परस्पर आठ हाथ की दूरी पर न हो। ये स्तंभ मण्डप तथा शहतीर धारण करने के कारण दृढ़ तो हों ही पर उन पर पुत्तलिकाओं के मनोहर चित्र भी अंकित हों जिससे नाट्यमण्डप की सुन्दरता और सुरुचि का वातावरण उपस्थित हो। यह स्तंभ विधान तो विशेष रूप से चतुरस्र नाट्यमण्डप के लिए होता है परन्तु विकृष्ट नाट्यमण्डप का आकार बड़ा होने से उसमें अधिक स्तम्भों की आवश्यकता होती है। अभिनवगुप्त ने भी यह स्पष्ट कर दिया है कि 24 स्तम्भ तो षड्दारुक पर स्थापित

स्तम्भों के अतिरिक्त हैं। इसलिए चतुरस्र में अट्ठाइस तथा विप्रकृष्ट में उससे भी अधिक स्तम्भों की स्थापना होती है। त्र्यस्र नाट्यमण्डप के स्तम्भों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। आचार्य शङ्कुक तथा भट्टलोल्लट आदि स्तम्भों की संख्या आठ मानते हैं। आचार्य भरत मुनि दश और छः स्तम्भों के अतिरिक्त पुनः आठ स्तम्भों में स्थापित करने की बात करते हैं किन्तु उन्होंने उसके स्थान का निर्देश नहीं किया है।

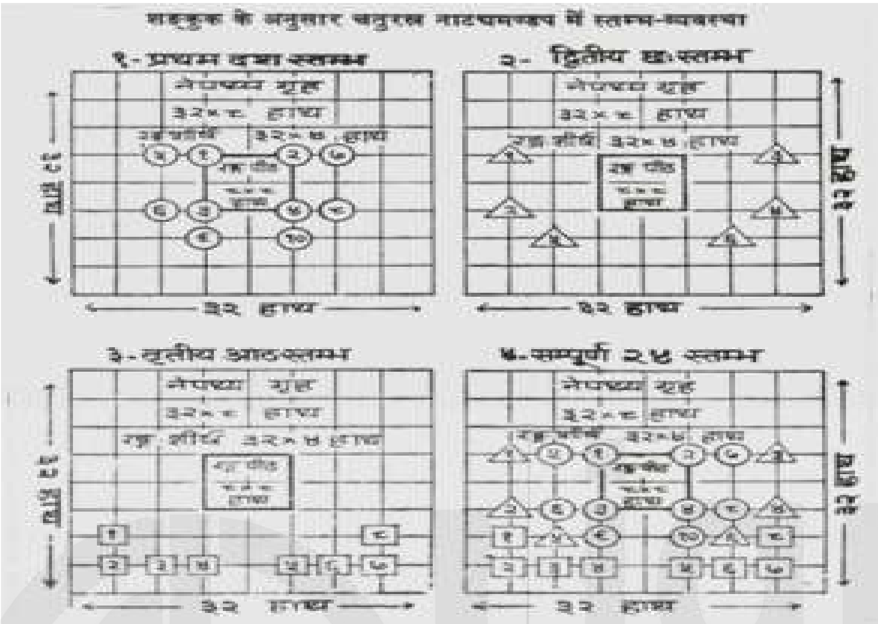

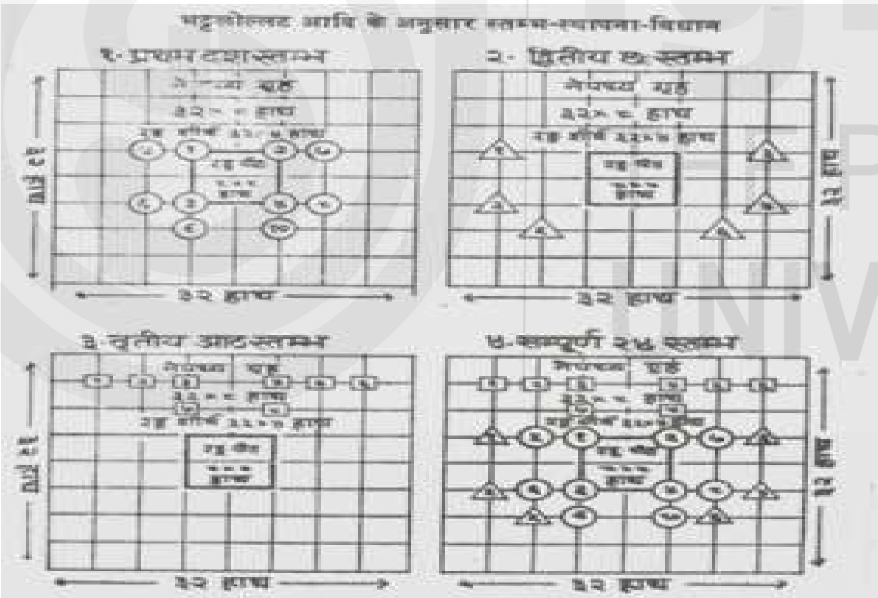

आचार्य शङ्कुक ने उन आठ स्तम्भों के स्थापना का निर्देश करते हुए लिखा है कि दक्षिण भित्ति के उत्तर की ओर तीन और दक्षिण में पूर्व स्थापित स्तम्भ के दक्षिण की ओर दोनों से चार हाथ की दूरी पर स्तम्भ स्थापित करें। उसी प्रकार उत्तर की भित्ति से दक्षिण की ओर उत्तर से पूर्व स्थापित स्तम्भ से तथा उत्तर भित्ति से चार हाथ की दूरी पर एक स्तम्भ स्थापित करें। तदनन्तर पूर्व भित्ति से चार–चार हाथ की दूरी पर रंगपीठ के दोनों भाग में दो–दो स्तम्भ स्थापित करें। पुनः उसके बाद उनसे भी चार–चार हाथ की दूरी पर दो स्तम्भ और खड़ा करें। इस प्रकार स्तम्भों की कुल संख्या आठ हो जाती है। अतः शंकुक के मत में $10 \times 6 \times 8 = 24$ स्तम्भ नाट्यमण्डप के भीतर स्थापित किये जाते है और चार स्तम्भ नाट्यमण्डप के बाहर होते हैं। जिससे कुल स्तम्भों की संख्या अट्ठाइस हो जाती है। आचार्य भट्टलोल्लट प्रदत्त सोलह

स्तम्भ की स्थापना समान ही मानते हैं। किन्तु आठ स्तम्भों की स्थापना के सम्बन्ध में उनका मानना है कि ये आठों स्तम्भ नेपथ्यगृह से सम्बन्धित है। इनका कहना है कि प्रेक्षकों के बैठने के स्थान में स्तम्भों को खड़ा करने से स्थान की कमी हो जाती है। प्रेक्षकों को दृश्य देखने में भी असुविधा होती है। इसलिए भट्टलोल्लट ने आठ स्तम्भों को नेपथ्यगृह में खड़ा करने के लिए कहा है। उनके मतानुसार नेपथ्यगृह के दक्षिण–भित्ति के मध्य से उत्तर की ओर चार हाथ की दूरी पर प्रथम स्तम्भ खड़ा करें, उस स्तम्भ के उत्तर की चार हाथ की दूरी पर दूसरा स्तम्भ और उससे भी चार हाथ की दूसरी पर उत्तर में तीसरा स्तम्भ खड़ा करें। इसी प्रकार उत्तर–भित्ति के मध्य भाग से दक्षिण की ओर चार–चार हाथ की दूरी पर तीन स्तम्भ स्थापित करें। पुनः नेपथ्य के तीसरे और चौथे स्तम्भ से चार–चार हाथ की दूरी पर रंगशीर्ष से सटे हुए दो स्तम्भों को स्थापित करें। इस प्रकार भट्टलोल्लट का आठ स्तम्भ अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है।

3.3.6 स्तम्भों के देवता

नाट्यशास्त्र परम्परा में स्तम्भों के देवता होते हैं क्योंकि यही स्तम्भ नाट्यमण्डप के भार का वहन करते हैं। आचार्य भरत के अनुसार स्तम्भ चार प्रकार के होते है जिसका नाम उल्लेख नाट्यशास्त्र में इस प्रकार मिलता है–

सर्वं रक्तं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च गुडौदनम्।
वैश्यस्तम्भे विधिः कार्यो दिग्भागे पश्चिमोत्तरे।।
सर्वं पीतं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च घृतौदनम्।
शुद्रस्तम्भे विधिः कार्यः सम्यक्पूर्वोत्तराश्रये।।
नीलप्रायं प्रदातव्यं कृसरं च द्विजाशनम्। (ना.शा. 2/55–57)

अर्थात् पश्चिम और उत्तर दिशा वायव्य कोण में स्थापित वैश्यस्तम्भ पर सारी विधियां पीत वर्ण की होनी चाहिए और ब्राह्मणों को घी–चावल देना चाहिए। पूर्व और उत्तर दिशा के मध्य ईशान कोण में स्थापित शूद्र स्तम्भ पर समस्त विधान प्रायः नील वर्ण के पदार्थों से अच्छी तरह करनी चाहिए और ब्राह्मणों को खिचड़ी खिलानी चाहिए। इस प्रकार यहाँ दिशा का महत्त्व प्रतिपादित है। दिक्पालों की ही पूजा यहाँ होती है। यदि रंगों की बात की जाय तो लाल रंग ब्रह्मा, पीला रंग विष्णु, सफेद रुद्र, काला इन्द्र या यम, आदि के रूप में स्वीकार किया जाता है। नाट्यमण्डप तैयार हो जाने पर देवों की पूजा की जाती है। नान्दी में भी देव स्तुति या देवता स्तुति मिलती है।

3.4 सारांश

रंगमंच के निर्माण की विधि एवं सावधानी को ही मुख्यरूप से इस इकाई के अन्तर्गत प्रतिपादित किया गया है। जिसमें नाट्यमण्डप के निर्माण विधि के साथ भूमिशोधन विभाजन, स्थापन, भित्तिकर्म, स्तम्भकर्म, स्तम्भ के देवता आदि को स्पष्ट किया गया है। ये सभी तत्त्व नाट्यमण्डप के निर्माण और महत्त्व को सिद्ध करते हैं। ये सभी रंगमंचीय व्यवस्था के जनक हैं। रंगमंच के निर्माण में वास्तु अर्थात् नाट्यगृह के भूमि, आकार, परिमाण आदि पूजा इत्यादि के साथ करना चाहिए। इस प्रक्रिया के द्वारा एक सुव्यवस्थित रंगमंच का निर्माण सम्भव हो पाता है। जिसका रंगमंच के निर्माण में

जानना आवश्यक होता है इसीलिए आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में निर्माण रंगमंच की विधि का प्रतिपादन किया है।

3.5 शब्दावली

भूमिशोधन – पृथ्वी का शोधन अर्थात् भूमि का परिष्कार।

विभाजन – नाट्यमण्डप के भूमि के आकार–प्रकार का सम्यक निर्धारण एवं उपयुक्त भूमि पर नाट्यमण्डप बनाने का निर्णय लेना विभाजन के अन्तर्गत आता है।

स्थापन – नाट्यमण्डप की स्थापना यानि निर्माण करना स्थापन कहलाता है।

भित्तिकर्म – नाट्यमण्डप को तैयार करने के लिए भित्ति (दिवाल) का निर्माण भित्ति कर्म कहलाता है।

स्तम्भ – नाट्यमण्डप का मुख्य आधार स्तम्भ होता है।

3.4 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, सं. डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2015
2. नाट्यशास्त्रविश्वकोश, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1999
3. भरत और भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009
4. श्रीविष्णुधर्मोत्तरमहापुराण, टीकाकार आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
5. नाट्यशास्त्रीय मूलतत्त्वों की विकास परम्परा, सं. कुसुम भूरिया दत्ता, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2012
6. नाट्यानुशासन, रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदाससस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, 2008
7. अग्निपुराण का नाट्यदर्शन, डॉ. संजय कुमार, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2018
8. नाट्यम् अंक 80, (नाट्यशास्त्र विशेषांक), नाट्यपरिषद् संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मार्च–2017
9. संस्कृत हिन्दी कोश, वामनशिवरामआप्टे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016

3.5 बोध प्रश्न

1. रंगमंच के निर्माण में अपेक्षित सावधानियों का वर्णन कीजिए।
2. रंगमंच की निर्माण कैसे और कब किया जाना चाहिए?
3. भित्तिकर्म के विषय में प्रकाश डालिए।
4. स्तम्भ स्थापना की विधि स्पष्ट कीजिए।
5. स्तम्भ देवता एवं स्थापना विधि का वर्णन कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 रंगमंच (नाट्यमण्डप) निर्माण विधि (भाग दो)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 मत्तवारणी का निर्माण

4.3.1 रंगपीठ और रंगशीर्ष

4.3.2 षड्दारुक का निर्माण

4.3.3 द्वार निर्माण

4.3.4 कुतप

4.3.5 नाट्यमण्डपों पर छत

4.3.6 'शेलगुहाकार' नाट्यमण्डप

4.3.7 रंगमण्डप की विभाजनपद्धति

4.3.8 नाट्यमण्डप के तीन भाग

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.7 बोध प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आपको :

- रंगमंच के आन्तरिक विषयों का प्रकाशन हो सकेगा।
- इसके आधार पर रंगमंच के निर्माण विधि का ज्ञान हो सकेगा।
- रंगमंच के अपेक्षित सावधानियों की ओर ध्यान आकर्षित हो सकेगा।
- विषयगत विषयों से अवगत हो सकेंगे।
- रंगमंच के विविध पक्षों का उद्‌घाटन हो सकेगा।

4.2 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत रंगमंच (नाट्यशास्त्र) के विविध पक्षों के साथ जो इसके अन्तरंग धर्म हैं उन्हें प्रकाशित किया गया है। क्योंकि जैसे भवन में भी अनेक प्रकार के कार्य व्यावहार की दृष्टि से उसके आन्तरिक स्वरूप को नियोजित किया जाता है उसी प्रकार रंगमंच के भी आन्तरिक स्वरूप को नियोजित किया जाता है। यथा मत्तवारणी, रंगपीठ, रंगशीर्ष, षड्दारुक, द्वार निर्माण आदि की व्यवस्था इस इकाई में प्रतिपादित की गयी है।

4.3 मत्तवारणी का निर्माण

मत्तवारणी नाट्यमण्डप का महत्त्वपूर्ण भाग है जिसका अर्थ वरामदा होता है। कोष ग्रन्थों में मत्तवारणा शब्द मिलता है जिसका अर्थ शब्दकल्पद्रुम में बरामदा या वरण्डा दिया गया है। मत्तवारणी रंगमण्डप के बाहर दोनों ओर के दो बरामदे होते हैं जिसके चार स्तम्भ होते हैं और ऊँचाई डेढ़ हाथ होती है। नाट्यमण्डप निर्माण में मत्तवारणी की अहम भूमिका मानी जाती है। रंगपीठ के दोनों ओर आठ गुणा आठ हाथ के डेढ़ हाथ ऊँचाई पर बने चबूतरों को मत्तवारणी कहा जाता है। जिसके सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र में कहा गया है–

रंगपीठस्य पार्श्वे तु कर्त्तव्या मत्तवारिणी।
चतुःस्तम्भसमायुक्ता रंगपीठप्रमाणतः।।
अर्ध्यर्धस्तोत्सेधेन कर्त्तव्या मत्तवारिणी।
ऊत्सेधेन तयोस्तुल्यं कर्त्तव्यं रंगमण्डपम्।। (ना.शा. 2/70–71)

अर्थात् रंगपीठ की दोनों बाजू में दोनों ओर रंगपीठ के माप के बराबर चार खम्बों से युक्त मत्तवारणि की रचना की जानी चाहिए। इस मत्तवारणि की ऊँचाई डेढ़ हाथ हो तथा इन दोनों मत्तवारणियों के बराबर ही रंगपीठ की ऊँचाई हो। विप्रदास के मतानुसार चार स्तंभों पर उपरिभूमिका (छत) बनायी जाती है जो नाट्यगृह की छत से भिन्न तथा उससे नीचे रहती है। इस उपरिभूमिका पर एक कलश निर्मित किया जाता है। अभिनवगुप्त मत में मत्तवारणी के दो अर्थ होते हैं। देव मन्दिरों में प्रदक्षिणा भूमि की तरह नाट्यमण्डप के चारों ओर फैली हुई आठ हाथ की यह भूमि ही मत्तवारणी होती है। अथवा रंगपीठ के दोनों पार्श्वों में 8×8 हाथ वर्गाकार व्यास में फैली समचतुरस्र भूमि मत्तवारणी होती है। द्वितीय मत अभिनवगुप्त का प्रतीत होता है क्योंकि रंगपीठ ही समस्त नाट्यमण्डप का केन्द्र होता है। उसका मत्तवारणी से नीचा होने का कोई अर्थ नहीं है। अतः यह रंगपीठ के प्रमाण के अनुरूप तथा उसके दोनों पाश्वों में होती है। लेकिन मत्तवारणी से सम्बन्धित श्लोक में एक वचनान्त पार्श्वे पद के प्रयोग के कारण रंगपीठ के सम्मुख मत्तवारणी का विधान किया है और वह रंगपीठ के दोनों ओर वरण्डा नहीं अपितु मत्तगजों की श्रेणी रंगपीठ के रूप में वर्तमान रहती है। मत्तवारणी चार स्तम्भों में बंधी रहती है। इसके सम्बन्ध में गोवर्धन पांचाल का मन्तव्य है कि वास्तुशास्त्रीय दृष्टि से रंगमंच के ऊपर की छत को सहारा देने के लिए मत्तवारणी के स्तम्भों का उपयोग किया जाता है। परन्तु उनके साथ कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य करते हुए भी देखा जाता है। यथा– पात्रों का उनके पीछे छुपना, अभिज्ञानशाकुन्तल में जो दुष्यन्त द्वारा हिरण का पीछा करने के क्रम में वृक्षों की झाड़ियों को ओट के रूप प्रयुक्त किया गया है। कोई पात्र जैसे शकार के द्वारा पीछा की जाती हुई वसन्तसेना का मत्तवारणी के किसी स्तंभ पर थककर सिर टिकाना आदि। अभिनवगुप्त के अनुसार मत्तवारणी रंगपीठ के दोनों बगल 8×8 हाथ का वर्गाकार में फैली हुई समचतुरस्र होनी चाहिए। कुछ आचार्य रंगपीठ और रंगशीर्ष दोनों के बराबर आयताकार में भी 16×8 हाथ की मत्तवारणी मानते हैं। मत्तवारणी की ऊँचाई रंगपीठ के बराबर होनी चाहिए। प्रो. सुब्बाराव ने नाट्यमण्डप पर लिखे गये निबन्ध में मत्तवारणी के सम्बन्ध में एक नवीन कल्पना की है। उन्होंने पार्श्वे, कर्त्तव्या, मत्तवारणी शब्दों में प्रयुक्त एक वचन के आधार पर रंगपीठ के सामने एक मत्तवारणी का विधान बताया है। उन्होंने मत्तवारणी शब्द का अर्थ 'मत्तानां वारणानां श्रेणिः'। अर्थात् मत्तगजों की श्रेणी किया है जो रंगपीठ के सामने डेढ़ हाथ ऊँची दीवाल पर चित्रित मत्त

हाथियों की पंक्ति चार स्तम्भों में बधी होती है। उन्होंने अपने मत के समर्थन में चतुः स्तम्भसमायुक्ता के स्थान पर चतुस्तम्भसमायुक्ता पाठ माना है। स्तम्भ शब्द का अर्थ हाथियों के बांधने का स्थान (आलान) है रंगपीठ के सामने अंकित चार स्तम्भों से युक्त मत्त वारणों की श्रेणी इन्द्र के ऐरावत गज के प्रतीक रूप में है। उनकी यह कल्पना अलंकरण एवं स्थापत्यकला की दृष्टि से यह भले ही सुन्दर और उपयोगी हो लेकिन यह मत आचार्य भरत के विपरीत होने से ग्राह्य नहीं है। डॉ. मनमोहन घोष तथा प्रो. मनकद ने मुख्य मण्डप के अन्तर्गत ही मत्तवारणी की कल्पना की है, जो इस प्रकार है–

आयताकार मत्तवारणी

16×32 हाथ

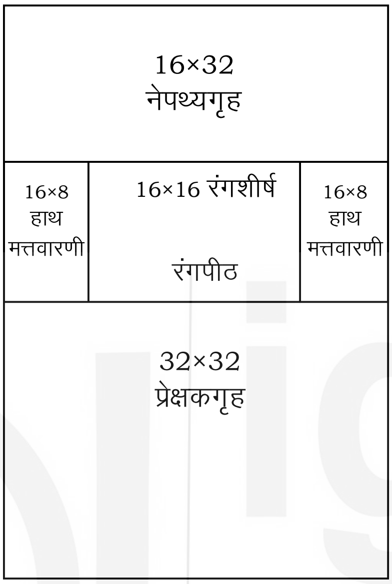

समचतुरस्र मत्तवारणी

8×32 हाथ

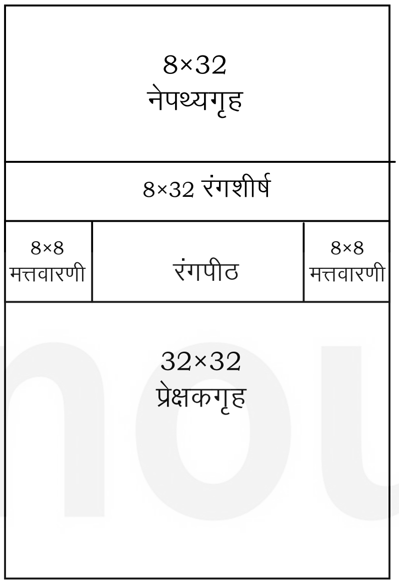

किन्तु यह मत भरत या अभिनवगुप्त के सिद्धान्त से विपरीत है। प्रो. भानु ने मत्तवारणी शब्द का अर्थ मत्तों का वारण करने वाली क्रिया है। उनका कथन है कि उन्मत्त सामाजिकों से अभिनय–प्रदर्शन की रक्षा के लिए रंगपीठ के सामने एक दीवाल होती थी जिसे उन्मत्तों के वारण करने के कारण मत्तवारणी कहा जाता है। लेकिन यह मत अभिनवगुप्त की दृष्टि में उपमुक्त प्रतीत नहीं होता है।

आयताकार मत्तवारणी

16×32 हाथ

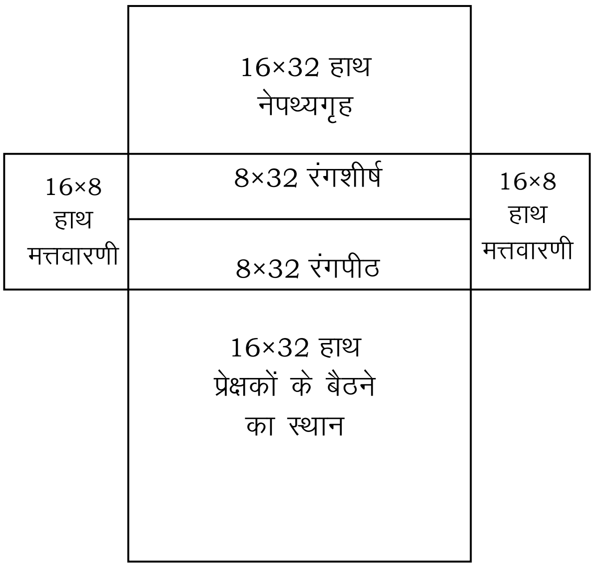

16 हाथ

अभिनवगुप्त के अनुसार रंगपीठ के दोनों ओर नाट्यमण्डप के बाहर चार स्तम्भों के युक्त आठ हाथ लम्बी तथा आठ हाथ चौड़ी (8×8 हाथ) वर्गाकार समचतुरस्र मत्तवारणी होती है। अन्य व्याख्या के अनुसार मत्तवारणी रंगशीर्ष और रंगपीठ दोनों के बगल में आयताकार 16×8 हाथ की मत्तवारणी होती है। इस प्रकार अभिनवगुप्त की दृष्टि में दो प्रकार की ही मत्तवारणी होती है— आयताकार और समचतुरस्र। अभिनवगुप्त के अनुसार मत्तवारणी का स्वरूप निम्न प्रकार है—

नाट्यशास्त्र में बतलाया गया है कि मत्तवारणी पर माला, धूप, वस्त्र आदि नाना प्रकार के पदार्थ अर्पित करना चाहिए और भूतों की प्रिय बलि देनी चाहिए। उस मत्तवारणी के स्तम्भों के नीचे कुछ व्यक्तियों द्वारा लोहा डालना चाहिए और ब्राह्मणों को भोजन में खिचड़ी देनी चाहिए। इस प्रकार विधि के अनुसार पुरस्कारों अर्थात् दान आदि के साथ मत्तवारणी की रचना करनी चाहिए और उसके बाद शास्त्रोक्त प्रक्रिया के अनुसार रंगपीठ का निर्माण करना चाहिए (ना.शा. 2/72–74)।

4.3.1 रंगपीठ और रंगशीर्ष

मत्तवारणी का निर्माण रंगमण्डप अर्थात् सामाजिक के बैठने के स्थान से डेढ़ हाथ की ऊँचाई पर होना चाहिए और रंगपीठ के दोनों ओर बनाई गयी मत्तवारणी की समान ऊँचाई का ही रंगपीठ होना चाहिए। कुछ विद्वान् रंगपीठ को प्रेक्षकों के बैठने के स्थान से नीचा दिखलाया है। परन्तु विचार करने पर यही सिद्ध होता है कि रंगपीठ प्रेक्षकों के बैठने के स्थान से डेढ़ हाथ ऊँचा ही होता है। यह सम्भव है कि रंगपीठ से रंगशीर्ष और नेपथ्य ऊँचे होते हैं क्योंकि नाटकों में जो रंगावतरण शब्द मिलता है उससे यह ध्वनित होता है कि पात्रों का नेपथ्य और रंगशीर्ष से रंगपीठ का अवतरण होता है। इससे स्पष्ट होता है कि रंगपीठ रंगमण्डप में प्रेक्षकों के बैठने का स्थान से ऊँचा और नेपथ्य तथा रंगशीर्ष से नीचा होता है। रंगपीठ के प्रसंग में सर्वप्रथम रंगशीर्ष के विषय में आचार्य भरत कहते हैं—

रंगशीर्षन्तु कर्त्तव्यं षड्दारुकसमन्वितम्
कार्यं द्वारद्वयं चात्र नेपथ्यगृहकस्य तु।।
पूरणे मृत्तिका चात्र कृष्णा देया प्रयत्नतः।। (ना.शा. 2/75–76)

अर्थात् छः लकड़ी के खम्बों से युक्त रंगशीर्ष बनाना चाहिए और उसमें नेपथ्यगृह के दो द्वार बनाने चाहिए तथा उसे भरने के लिए काली मिट्टी डालनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि छः सुन्दर काष्ठ खण्डों से युक्त रंगशीर्ष की रचना करनी चाहिए और नेपथ्यगृह में प्रवेश के लिए दो द्वार बनाना चाहिए। अभिनवगुप्त के अनुसार नेपथ्यगृह की भित्ति के सामने एक दूसरे से आठ के अन्तर पर दो–दो खम्बे तथा उनके ऊपर–नीचे की दो लकड़ियों के दो खंभों, उनके ऊपर नीचे की दो लकड़ियों और उनके बीच के दो खंभों से सुशोभित त्रिद्वारक को षड्दारुक कहते हैं। रंगशीर्ष को कछुए की पीठ के समान अथवा मछली की पीठ के समान नहीं बनाना चाहिए बल्कि दर्पण के तल के समान समतल होना चाहिए। जिसके सम्बन्ध में आचार्य भरत ने कहा है कि कुशल कारीगरी के द्वारा निर्माण के रंगशीर्ष में रत्न रखना चाहिए। पूर्व में वज्र दक्षिण पार्श्व में वैदूर्य, पश्चिम की ओर स्फटिक, उत्तर दिशा में प्रवाल (मूंग) और बीच में सोना रखना चाहिए। इस प्रकार रंगशीर्ष का निर्माण करके लकड़ी का काम प्रारम्भ करना चाहिए। ऊह–प्रत्यूह से युक्त, नाना प्रकार के शिल्पों से समन्वित, अनेक प्रकार के संजवन अर्थात् भित्तिसदृश प्रतीयमान चतुःशाल, काष्ठ फलक से अलंकृत अनेकविध

सर्प, गज आदि के चित्रों से सुसज्जित चारों ओर से साल–भंजिकाओं अर्थात् पुत्तालियों से अलंकृत निर्व्यूह अर्थात् उभरे हुए चित्रों एवं कुहर यानि भीतर खुदे हुए चित्रों से युक्त, नाना प्रकार की वेदिकाओं से समन्वित अनेक प्रकार की शैलियों के विन्यास से संयुक्त यन्त्र सदृश जालियों वाले खिड़कियों से सुशोभित सुन्दर पीठ एवं धारणियों से युक्त कपोत वाली स्थान से युक्त अनेक प्रकार के तल पर खड़े किये गये स्तम्भों से सुशोभित काष्ठ कर्म करना चाहिए। इस तरह रंगशीर्ष के निर्माण में दारुकर्म (काष्ठकर्म) बतलाये गये हैं।

4.3.2 षड्दारुक का निर्माण

नेपथ्यगृह की भित्ति से लगे हुए एक दूसरे से आठ हाथ के अन्तर पर दो स्तम्भों को खड़ा करके उसको जो मुख है उसकी अपेक्षा से चार हाथ के अनन्तर पर दो और खम्बों को खड़ा करें। उसके नीचे और ऊपर दो काष्ठ ये छः काष्ठ हैं। जहाँ पर छः काष्ठ हो उसे षड्दारुक कहते हैं। रंगशीर्ष में विशेष छः काष्ठ खण्ड लगाने की विधि को षड्दारुक कहा जाता है। यहाँ पर षड्दारुक शब्द से संज्ञा अर्थ में कन् प्रत्यक्ष हुआ है। इससे विचित्र रचनायुक्त सूचित होता है। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार नेपथ्यगृह की भित्ति के सामने एक दूसरे से आठ हाथ के अन्तर पर दो–दो खम्बे तथा उसके ऊपर–नीचे की दो लकड़ियों सब मिलकर छह काष्ठ खण्ड होते हैं। दूसरे व्याख्याकार के अनुसार दोनों किनारों के दो खंभों उनके ऊपर–नीचे का दो लकड़ियों और उनके बीच के दो खंभों से सुशोभित विद्वारक को षड्दारुक कहते हैं। तीसरे व्याख्याकार के अनुसार– **1. ऊह**– स्तम्भ के ऊपर के सिरे से निकला हुआ काष्ठ, **2. प्रत्यूह**– उससे आगे निकली हुई तुला, **3. निर्यूह**– तुला के किनारों से निकले हुए तखतो की दीवार, **4. संजवन**– भित्ति के समान आकाश में निकले हुए तखते, **5. अनुबन्ध**– खंभों पर बने हुए सिंह आदि, सांप या हाथी आदि, **6. कुहर** – तख्तों के ऊपर खुदे हुए पर्वत, नगरों के कुजें तथा गह्वर आदि रूप ये षड्दारुक है। प्रो. सुब्बाराव ने षड्दारुक की कुछ भिन्न प्रकार की व्याख्या की है और उसका चित्त भी निर्मित भी किया है।

षड्दारुक नेपथ्यगृह की दीवाल से लगे हुए एक दूसरे से आठ हाथ की दूरी पर दो खम्भे खड़े करने चाहिए। उसके पास चार–चार हाथ की दूरी पर दो और खम्भे खड़ करने चाहिए। इन चारों खम्भों के ऊपर और नीचे दो और काष्ठ लगाने चाहिए। ये छः काष्ठ 'षट्दारुक' कहलाते है। तात्पर्य यह है कि पहिले दो खम्भे एक दूसरे से आठ हाथ की दूरी पर खड़े किये जाँय। तदनन्तर उसके मुख की अपेक्षा से दोनों ओर चार–चार हाथ की दूरी पर दो खम्भे और खड़े किये जाँय। इन खम्भों के ऊपर और नीचे की ओर सरदल और चौखट के रूप में दो काष्ठ लगाये जाँच। इस प्रकार ये चार खम्भे तथा ऊपर और नीचे के दो काष्ठ मिलकर 'षट्दारुक' कहलाते हैं। इस प्रकार प्रथम व्याख्या के अनुसार 'षट्दारुक' का स्वरूप निम्न प्रकार है–

षड्दारुक की प्रथम-स्थिति

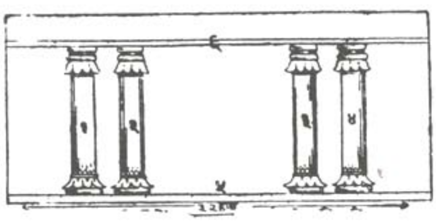

क्रमशः द्वितीय व्याख्या के अनुसार दोनों पार्श्वों भित्तियों के सहारे दो खम्भे खड़े किये जाँय और उन दोनों पार्श्वों के बीच में दो खम्भे और खड़े किये जाँय तथा दोनों पार्श्वों के ऊपर और नीचे दो काष्ठ लगाये जाँय। इन छः काष्ठों को 'षट्दारुक' कहते हैं। इस प्रकार दूसरी व्याख्या के अनुसार षट्दारुक की स्थिति निम्न प्रकार है–

षट्दारुककी द्वितीय-स्थिति

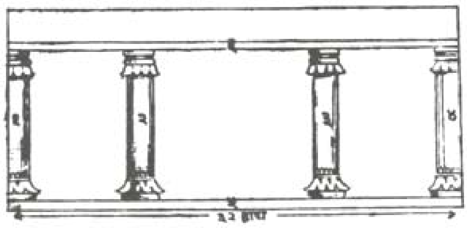

क्रमशः तृतीय व्याख्या के अनुसार ऊह, प्रत्यूह, निर्यूह, व्यूह (संजवन), संव्यूह (अनुबन्ध) और कुहर नामक छः काष्ठों को 'षट्दारुक' कहते हैं। खम्भे के ऊपरी भाग से निकला हुआ काष्ठ 'ऊह' कहलाता है। उस काष्ठ से भी बाहर निकली हुई तुला को 'प्रत्यूह' कहते हैं। तुला के बाहर दो खम्भों के मध्य लगे हुए भित्ति सदृश फलक को 'निर्यूह' कहते हैं। ऊपर की ओर उठे हुए भित्ति के समान चतुःशाल फलक को 'संजवन' या 'व्यूह' कहते हैं। खम्भों के ऊपर बने हुए सिंह, गज, सर्प आदि के उभरे हुए चित्र 'अनुबन्ध' या 'संव्यूह' कहलाते हैं। खम्भों के ऊपर–भीतर की ओर खोदकर बनाये गये पर्वत, नगर, कुंज, गुहा रूप अंकन 'कुहर' कहे जाते हैं। इन छः प्रकार के दारुकर्म को 'षट्दारुक' कहते हैं। तीसरी व्याख्या के अनुसार 'षट्दारुक' का स्वरूप निम्न प्रकार है–

षट्दारुक की तृतीय स्थिति

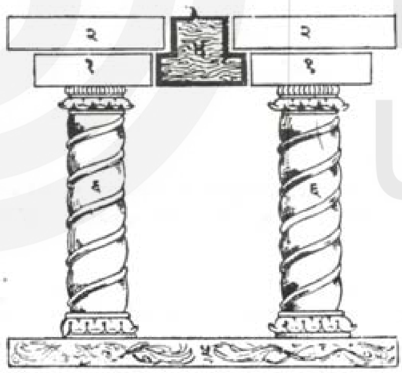

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

4.3.3 द्वार निर्माण

आचार्य भरत ने रंगशीर्ष के पृष्ठभाग में स्थित नेपथ्यगृह में दो द्वारों का सबसे पहले विधान किया है–

कार्यं द्वारद्वयं चात्र नेपथ्यगृहकस्य। (ना.शा. 2/76)

ये दोनों द्वार नेपथ्यगृह एवं रंगशीर्ष को विभाजित करने वाली भित्ति में बनाये जाते हैं। अतः रंगशीर्ष के पृष्ठभाग में नेपथ्यगृह की दीवाल में दो द्वार की कल्पना स्पष्ट है। ये दोनों द्वार अपरिहार्य हैं। परन्तु यदि रंगपीठ और रंगशीर्ष पृथक है और दोनों ही किसी यवनिका से नहीं अपितु भित्ति से विभाजित हो तो नेपथ्यगृह से प्रविष्ट पात्र तो रंगशीर्ष पर रहते हैं। उनके आने का द्वार रंगपीठ के पृष्ठभाग में होना चाहिए क्योंकि पात्र

रंगपीठ पर प्रवेश कर सके। आचार्य भरत ने पुनः एक स्थल पर द्वार का विधान किया है। यह भी नेपथ्यगृह के सम्बन्ध में ही है। रंगपीठ पर प्रवेश के लिए एक द्वार हो तथा जन–सामान्य के प्रवेश के लिए एक द्वार प्रेक्षकगृह में रंगपीठ के सम्मुख हो–

द्वारं चैकं भवेत्तत्र रंगपीठप्रवेशनम्।
जनप्रवेशनं चान्यदाभिमुख्येन कारयेत्।।
रंगस्याभिमुखं कार्यं द्वितीय द्वारमेव तु। (ना.शा. 2/102–103)

यहाँ 'द्वार' शब्द में एक वचन का प्रयोग किया गया है। त्र्यस्र नाट्यमण्डप में कोण–स्थान तथा रंगपीठ के पृष्ठभाग में द्वारों का विधान किया गया है। इसके अतरिक्त कुछ आचार्यों के मत में तीन द्वार की कल्पना की गयी है। अभिनवगुप्त चार द्वार को अभिष्ट मानते हैं। डी.आर. मकनद के द्वारा पांच द्वार की कल्पना की गयी है तथा कुछ अन्य छः द्वार भी मानते हैं। इस तरह आचार्य भरत के दो द्वार के रूप ने तीन से छः द्वार की कल्पना की गयी है। आचार्य भरत ने नाट्यमण्डप के लिए कुछ द्वारों का निषेध भी किया है। उनका मानना है कि सम्मुख द्वार होने से नाट्यमण्डप निर्वात और गम्भीर धीर शब्दवान नहीं हो पाता है। इसलिए पात्रों द्वारा उच्चरित पाठ्य की प्रतिध्वनि नहीं होती है। अतएव भरत ने द्वार विद्ध नाट्यमण्डप का निषेध किया है। द्वार के सम्बन्ध में विहित विधि–निषेध नाट्य प्रयोग की उपयुक्तता को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किये गये हैं। इन द्वारों के माध्यम से सामाजिक एवं पात्रों का प्रवेश तथा अपेक्षित प्रकाश की व्यवस्था होती थी, परन्तु द्वार की रचना शैली ऐसी होती थी कि पात्रों द्वारा उच्चरित वाक्य गंजित भी हो। द्वार के द्वारा प्रकाश व्यवस्था भी समुचित होती है।

4.3.4 कुतप

नाट्यमण्डप में कुतुप एक महत्त्वपूर्ण भाग है। वस्तुतः कुतप (वाद्यवृन्द और गायक–गायिकाएँ) नेपथ्यगृह तथा रंगशीर्ष के बीच की भित्ति में बने दोनों दरवाजों के बीच वेदी पर बैठाया जाता है। कुतप के सदस्यों का मुख चारों दिशाओं में रहता है, उन्हें अभिनेताओं का सामना करने की आवश्यकता नहीं होती है। कुतप रंगशीर्ष पर रहता है और रंगशीर्ष तथा रंगपीठ के बीच में जवनिका (पर्दा) रहती है। अतः कुतप प्रायः जवनिका से ढका रहता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने विस्तार से बताया है कि रंगशीर्ष पर बनी वेदी के ऊपर कुतप का कौन सा सदस्य कहाँ बैठेगा। तदनुसार सबसे पहले पूर्व की ओर मुख करके मार्दङ्गिक (मृदंग बजाने वाला) बैठता है, उसके पाणविक (पणववादक) बैठते है। रंगपीठ के दक्षिण की ओर गायक बैठता है, जिसका मुख उत्तर दिशा में रहता है। उत्तर की ओर गायिकाएं बैठती हैं, जिनका मुख दक्षिण में रहता है। इनके वाम भाग की ओर वैणिक (वीणा वादक) बैठता है और उनसे कुछ हट कर बाँसुरी वादक। इस दृष्टि नाट्यमण्डप कुतुप महत्त्वपूर्ण भाग के रूप में सामने आता है।

4.3.5 नाट्यमण्डपों पर छत

नाट्यमण्डप धूप और वर्षा से सुरक्षित रहे इस लिए उसके छत की आवश्यकता होती है। यद्यपि भरत ने नाट्यमण्डप के प्रधान अंगोपांगों के विवरण के प्रसंग में 'छत' के सम्बन्ध में मौन ही धारण किया है। ये भारतीय नाट्यगृह छतदार थे या प्राचीन ग्रीक नाट्य–गृहों की तरह ये ऊपर से खुले हुए थे ? आचार्य भरत ने छत का पृथक्

विधान तो नहीं किया है परन्तु भित्ति–रचना में वातायनों की न्यूनता, मंडप–धारण में स्तंभों की दृढ़ता, नाट्य–मंडप की धीर–शब्दता तथा शैलगुहा जैसे आकार के नाट्य–मंडप की परिकल्पना से नाट्य–मंडपों के छतदार होने का समर्थन होता है। यदि नाट्य–मंडप छतदार नहीं होते तो वातायन से प्रकाश आन की कल्पना क्यों की जाती। यदि स्तंभों के ऊपर मंडप नहीं होते तो उनके दृढ़ होने का क्या अर्थ होता है ? छत होने पर ही उच्चरित पाठ्य प्रतिध्वनित होता है। और यदि ऊपर छत न हो तो पर्वत की गुफा के समान उनका आकार ही कैसे होता? इन विप्रतिपत्तियों का निराकरण छत के द्वारा ही सम्भव है। अतएव भरत प्रतिपादित नाट्यमण्डप पर छतों की रचना का निश्चित रूप से विधान किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है।

4.3.6 'शैलगुहाकार' नाट्यमण्डप

पर्वत–गुफाओं में शब्द प्रतिध्वनित होते हैं, उसी के अनुरूप 'शैलगुहाकार' नाट्यमण्डप में उच्चरित पाठ्य प्रतिध्वनित होते हैं। राव महोदय के मत से 'शैलगुहाकार' और 'द्विभूमि' शब्दों का प्रयोग भरत ने रंगपीठ के ऊपर की छत 'रंगशीर्ष' के लिए किया है। रंगशीर्ष की ऊपरी छत विषम–स्तर है, समस्तर नहीं होता है। यदि रंगशीर्ष समस्तर हो तो आवाज टकराकर रंगपीठ पर ही चली आएगी। इसीलिए भरत ने 'विषमस्तर रंगशीर्ष' की परिकल्पना की है, क्योंकि उच्चरित पाठ्य 'विषमस्तर, द्विभूमि, शैलगुहाकार', 'रंगशीर्ष' से प्रतिध्वनित हो प्रेक्षकोपवेशन की ओर प्रसारित हो। राव महोदय की यह कल्पना अत्यन्त समृद्ध एवं नाट्य–प्रयोग की श्राव्यता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है एवं मूल्यवान् भी है।

4.3.7 रंगमण्डप की विभाजनपद्धति

प्राचीन रंगमंडप की विभाजनपद्धति का विश्लेषण करने पर यवनिका के प्रयोग की अनिवार्यता सिद्ध हो जाती है। रंगमंडप के आधे भाग में प्रेक्षकोपवेशन रहता है, शेष आधे भाग में रंगपीठ (मुख्य रंगभूमि) रंगशीर्ष भौर नेपथ्यगृहों की योजना होती है। रंगपीठ के अग्रभाग में यवनिका टंगी रहती है। अपनी साजसज्जा में प्रस्तुत पात्र यवनिका के हटते ही प्रेक्षकों के दृष्टिपथ में प्रवेश करते हैं। रंगपीठ के पृष्ठभाग में रंगशीर्ष होता है जहां अगले दृश्यों को प्रस्तुत करने वाले पात्र प्रतीक्षा करते हैं। वहाँ वाद्य आदि विभिन्न सामग्रियाँ रहती हैं। रंगपीठ और रंगशीर्ष या तो यवनिका द्वारा विभाजित होते हैं या स्थायी भित्ति रचना द्वारा उसे विभाजित किया जाता है। दोनों के मध्य भित्ति होने पर दो द्वारों की परिकल्पना की गई है जहाँ भी यवनिका टंगी रहती है। रंगशीर्ष के पृष्ठभाग में नेपथ्यगृह होता है जहाँ पात्रों की वेशभूषा, रूपसज्जा आदि की नेपथ्यज विधियों का प्रयोग होता है। यहाँ नेपथ्यगृह के सम्मुख यवनिका अनिवार्य रूप से रहती है।

4.3.8 नाट्यमण्डप के तीन भाग

नाट्यमण्डप पर ही आभ्यन्तर, बाह्य और माध्यम की परिकल्पना की जाती है। जो पात्र पहले से नाट्यमण्डप पर प्रवेश करते हैं, नाट्यमण्डप का वह भाग भी आभ्यन्तर होते हैं क्योंकि वे नाट्यमण्डप के अन्तःस्थान में हैं। परन्तु जो पात्र नाट्यमण्डप या रंगमंच पर पहले से नहीं होते, बाद में प्रवेश करते हैं, वे आभ्यन्तर नहीं, बाह्य होते हैं, और जिस मार्ग से वे पात्र रंगमंच पर प्रवेश करते हैं, रंगमंच का वह भाग माध्यम होता है। क्योंकि इसी माध्यम या प्रवेश–द्वार से रंगमंच के आभ्यन्तर भाग में पात्र प्रवेश करते

हैं। यह प्रवेश–द्वार नेपथ्य–गृह से सम्बन्धित होता है। रंगमंच के आभ्यन्तर भाग में स्थित पात्र से मिलने के लिए बाह्य भाग से यदि कोई पात्र आता है तो दक्षिणाभिमुख हो आत्मनिवेदन करता है। रंगमंच का विधान भरत ने जिस रूप में किया है उसके यह अनुरूप ही है। मुख्य भाग रंगपीठ है, यही आभ्यन्तर होता है, यहीं पर पात्र नाटय–प्रयोग करते हैं। शेष पश्चिम भाग में रंगशीर्ष और नेपथ्य होते हैं, रंगशीर्ष में ही वे विश्राम या प्रतीक्षा करते हैं, और इसी में स्थित नेपथ्यगृहाभिमुख दो द्वारों से पात्रों का आवागमन होता है।

4.4 सारांश

इस इकाई में रंगमंच के आन्तरिक विषयों का अध्ययन किया गया है जिसके अन्तर्गत मत्तवारणी, रंगपीठ, रंगशीर्ष षड्दारुक, कुतप, छत आदि विषयों का वर्णन किया गया है। यहाँ मत्तवारणी बताया गया है कि नाट्यमण्डप के बाहर दोनों ओर बने बरामदे मत्तवारणी होती है। रंगपीठ भी मत्तावरणी के समान दोनों ओर बनाई जाती है जो प्रेक्षकों के बैठने के काम में आती है। रंगपीठ से ऊँचा बना भाग रंगशीर्ष कहलाता है। नाट्यमण्डप में प्रयुक्त षड्दारुक का प्रयोग भी यहाँ बतलाया गया है वस्तुतः छह काष्ठ खण्ड लगाने की विधि को षड्दारुक कहा जाता है। नेपथ्य और रंगशीर्ष के मध्य का भाग कुतप होता है। धूप–बरसात आदि से बचने के लिए नाट्यमण्डप का छत तैयार किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस इकाई के रूप में नाट्यमण्डप के सुव्यवस्थित स्वरूप का सहज अध्ययन हो सकेगा।

4.5 शब्दावली

मत्तवारणी – नाट्यमण्डप के दोनों ओर बनी अटारी। वरण्डा या सुसज्जित बर्हिभाग।

रंगपीठ – रंगशाला रंगपीठ कहलाती है।

कुतप – वाद्यवृन्द और गायकवृन्द के बैठने के स्थान को कुतप कहा जाता है।

रंग – रंगमंच, नाट्यशाला, नाट्यगृह, नाट्यमण्डप आदि अर्थ में प्रयुक्त होता है।

4.4 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, सं. डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2015
2. नाट्यशास्त्रविश्वकोश, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1999
3. भरत और भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009
4. श्रीविष्णुधर्मोत्तरमहापुराण, टीकाकार आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
5. नाट्यशास्त्रीय मूलतत्त्वों की विकास परम्परा, सं. कुसुम भूरिया दत्ता, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2012
6. नाट्यानुशासन, रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदाससस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, 2008

7. अग्निपुराण का नाट्यदर्शन, डॉ. संजय कुमार, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2018

8. नाट्यम् अंक 80, (नाट्यशास्त्र विशेषांक), नाट्यपरिषद् संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मार्च–2017

9. संस्कृत हिन्दी कोश, वामनशिवरामआप्टे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016

4.5 बोध प्रश्न

1. रंगमंच के आन्तरिक अभिधानों को स्पष्ट कीजिए।
2. मत्तवारणी की निर्माण विधि स्पष्ट कीजिए।
3. रंगपीठ से आप क्या समझते हैं?
4. षड्दारुक क्या है?
5. नाट्यमण्डप में द्वार की संख्या एवं उसके निर्माण विधि पर प्रकाश डालिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 रंगमंच (नाट्यमण्डप): निर्माण विधि(भाग तीन)

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 रंगमंच (नाट्यमण्डप) निर्माण विधि

- 5.3.1 काष्ठ विधि
- 5.3.2 भित्ति कर्म
- 5.3.3 सुधाकर्म
- 5.3.4 नेपथ्यगृह
- 5.3.5 प्रेक्षकों की उपवेशन व्यवस्था
- 5.3.6 ध्वनि एवं प्रकाश व्यवस्था
- 5.3.7 भरत के अनुसार विकृष्ट मध्य नाट्यमण्डप की सर्वश्रेष्ठता
- 5.3.8 रंगमंच के विषय में अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य
  - 5.3.8.1 यवनिका
  - 5.3.8.2 अन्य ग्रन्थों में नाट्यमण्डपविधि
  - 5.3.8.3 ग्रीक परम्परा में नाट्यगृह

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.7 बोध प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आपको :

- रंगमंच के सुविधाओं का ज्ञान हो सकेगा।
- रंगमंच विविध पक्षों का उद्घाटन हो सकेगा।
- रंगमंचीय अपेक्षित विषय उभरकर सामने आयेंगे।
- रंगमंच के साज–सज्जा के साथ अन्य नाट्यमण्डप परम्परा का ज्ञान हो सकेगा।
- रंगमंच की व्यवस्था का समुचित ज्ञान हो सकेगा।

5.2 प्रस्तावना

रंगमंच (नाट्यमण्डप) नाट्यशास्त्र का महत्त्वपूर्ण भाग है। यह वही स्थल है जहाँ नाटक का प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग उसके समुचित व्यवस्था से ही सफल एवं रूचिकर होता है। इसलिए 'नाट्यशास्त्र' में काष्ठ विधि, भित्तिकर्म, सुधाकर्म, प्रवेश–निकास, नेपथ्य, प्रकाश और ध्वनि की व्यवस्था का वर्णन किया गया है जिसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

5.3 रंगमंच (नाट्यमण्डप) निर्माण विधि

रंगमंच के निर्माण में उसके अनेक कर्मों की सावधानी अपेक्षित होती है जिससे अभिनयकर्ता और दर्शक को आत्ममुग्धता की अनुभूति होती रहे। साथ ही किसी को असुविधा न हो उसके लिए ध्वनि, प्रकाश नेपत्थ्य, काष्ठ विधि आदि का वर्णन नाट्यशास्त्र में किया गया है। जो इस प्रकार है–

5.3.1 काष्ठ विधि

भारतीय परम्परा में बहुत ही प्राचीन समय से दैनन्दिन जीवन को सहज सम्पादित करने के लिए लकड़ी (काष्ठ) इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। नाट्यमण्डप या रंगमंच के निर्माण में भी काष्ठ का अनेक रूपों में प्रयोग किया जाता है। नाट्यमण्डप में काष्ठ प्रयोग के सम्बन्ध में यह सबसे बड़ी बात सामने आती है कि यह सहज ही जंगलों से प्राप्त हो जाती है। जिसे आवश्यकतानुसार नाट्यमण्डप के प्रयोग में लाया जाता है। नाट्यमण्डप निर्माण में अनेक स्थलों पर काष्ठ का प्रयोग किया जाता है, जिसमें नागदन्त, षड्दारुक इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं।

5.3.2 भित्ति कर्म

नाट्यमण्डप के भित्ति कर्म भी महत्त्वपूर्ण है। भित्ति के सम्बन्ध में या भित्ति पर अनेक कार्य किये जाते है। यथा– छोटे–छोटे वातायन, असम्मुख द्वार ईटों का प्रयोग इत्यादि। भित्तिकर्म के सम्बन्ध में आचार्य भरत ने लिखा है–

भित्ति कर्मणि निवृत्तेस्तम्भानां स्थापनं तथा। (ना.शा. 2/50)

अर्थात् नाट्यमण्डप की स्थापना करके भित्तिकर्म प्रारम्भ करें। भित्ति का निर्माण किससे होता है यह विवाद का विषय है। परन्तु एक स्थान पर दर्शकों के बैठने के लिए जो चबूतरे बनते थे उसके इष्टिका से बनाने का निर्देश नाट्यशास्त्र में मिलता है। इस प्रकार नाट्यमण्डप के भित्ति कर्म में ईट का उपयोग प्रतीत होता है। भित्ति कर्म के रूप में भित्ति को सजाना, रंगों का प्रयोग करना और आधुनिक समय में ध्वनि अवशोषक भित्ति की बात की जाती है। नाट्यशास्त्र में भित्ति कर्म के विषय में कहा गया है–

भित्तिकर्म विधिं कृत्वा भित्तिलेपं प्रदापयेत्।
सुधाकर्म बहिस्तस्य विधातव्यं प्रयत्नतः।। (ना.शा. 2/89)

अर्थात् भित्ति रचना विधि पूरा करके भित्तिका पर लेपन करना चाहिए तथा उसके बाहर प्रयत्न पूर्वक चूने से पुताई करनी चाहिए।

5.3.3 सुधाकर्म

सुधाकर्म भी भित्तिकर्म से ही सम्बन्धित है। सुधाकर्म से तात्पर्य चूना पोतना होता है लेकिन यहाँ सुधाकर्म से अभिप्राय भित्ति प्रसाधन से है। आचार्य भरत का मानना है कि नाट्यमण्डप की भित्ति अत्यन्त कलात्मक और परिष्कृत होनी चाहिए। अभिनवगुप्त के मत में भित्ति लेपन का कार्य शंख बालू और सितुहा आदि के चुड़े से होना चाहिए। नाट्यमण्डप की भित्ति के चारों ओर से परिमिष्ट तथा अत्यन्त शोभन हो जाने पर चित्र रचना का विधान होना चाहिए। चित्रकर्म में सुन्दर स्त्री–पुरुष, वृक्षों का आलिंगन्न से

युक्त लताएं तथा मानव जीवन के भोग–विलास की कोमल भावनाएं उन नाट्यमण्डप की भित्तियों पर अंकित होनी चाहिए। नाट्यमण्डप के प्रसाधन को देखकर मौर्यकाल से गुप्तकाल तक के वैभव सम्पन्न प्रसादों और विथियों में विकसित सुकुमार विलास–लीलाओं का स्मरण हो जाता है। कहने का भाव यह है कि नाट्यमण्डप की भित्ति अलंकृत एवं सुसज्जित होनी चाहिए इससे प्रेक्षक मन नाट्यअभिनय के प्रति आकर्षित होता है।

5.3.4 नेपथ्यगृह

नाट्यमण्डप के रंगशीर्ष के पीछे का भाग नेपथ्य कहलाता है। नेपथ्य का अर्थ–वेश–भूषा धारण करने का स्थान है। नाट्यशास्त्र में नेपथ्य निर्माण प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ऐसा कहा गया है–

नेपथ्यगृहकं चैव ततः कार्यं प्रयत्नतः। (2/102)

आचार्य भरत के अनुसार नट में रामादि के व्यंजक वेश–भूषा को धारण करना नेपथ्य विधान है– रामादिव्यंजकों वेशो नटे नेपथ्यमुच्यते। इस प्रकार वेश–भूषा की रचना तथा वेश–भूषा धारण करने के स्थान को नेपथ्य कहते हैं। अन्य आचार्य के अनुसार कुशीलव के कुटुम्बीजन यानि पात्र जहाँ पर अभिनयोचित वेश–भूषा का धारण कर अभिनय के लिए तैयार होते हैं उसे नेपथ्य गृह कहते हैं–

नेपथ्यकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

नेपथ्य रचना विधान के सम्बन्ध में आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी ने कहा है–

विद्या विस्तरतः कुर्याद दौ भागौ तत्र पश्चिमे।
नेपथ्यगृहमादिश्य पूर्वं भूयो द्विधा क्रियात्।। (नाट्यानु. 1/63)

अर्थात् वेदी की लम्बाई के विस्तार को चौड़ाई से दो हिस्से में बांट दें। इनमें जो भाग पीछे की ओर हो उसे नेपथ्यगृह बनाये। बचे हुए अगले भाग का दो भागों में बांट दें। कहने का भाव है यदि नाट्यमण्डप 64×32 हाथ के आकार का है तो नेपथ्यगृह का आकार 16×32 होगा। नेपथ्य के द्वार के सम्बध में बताया गया है कि रंगपीठ में प्रवेश के एक ही प्रकार के दो द्वार निर्मित किये जाएं तथा नेपथ्यगृह के सामने की ओर नटों के प्रवेश के लिए तीसरा द्वार और रंगमण्डप के सामने प्रेक्षकों के प्रवेश के लिए चौथा द्वार निर्मित किया जाना चाहिए। नेपथ्य में अभिनय से सम्बन्धित सभी वस्तुएं रखी जाती है यथा– अस्त–शस्त्र, विमान, रथ, वस्त्र, ध्वजा इत्यादि।

5.3.5 प्रेक्षकों की उपवेशन व्यवस्था

नाट्यमण्डप में जिस स्थान पर दर्शक बैठकर रंग (नाट्य) का आनन्द लेते हैं उस स्थल को प्रेक्षक उपवेशन कहा जाता है। जिसके सम्बन्ध में आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–

प्रेक्षकस्योपवेशाय स्थाप्येरन् पीठिकाः सुखाः।
आसन्द्यो वा न व किञ्चित् व्यक्त्वा भूमिं सविष्टराम्।

(नाट्यानुशासनम् 1/88)

अर्थात् प्रेक्षकों के बैठने के लिए सुखद पीठिकाएं स्थापित की जा सकती हैं या कुर्सियां। अथवा कुछ नहीं, केवल आसन युक्त भूमि ही बैठने के लिए उपयोग में लाई जाय। साथ यह भी कहा गया है कि प्रेक्षक भूमि अग्रभाग में ऊँची रहे और पश्च भाग में नीची रहे। ऊँची भूमि अधिक ऊँची न हो। धरातल के बन्धुर रहने पर पीछे बैठे प्रेक्षकों को कठिनाई नहीं होती है।

5.3.6 ध्वनि एवं प्रकाश व्यवस्था

नाट्यमण्डप में ध्वनि एवं प्रकाश की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसा नाट्यमण्डप का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे दर्शक के संवाद सहज ही ग्राह्य हो जाये। जिसके लिए मध्यम प्रेक्षागृह को उपयुक्त माना गया है क्योंकि उसमें पाठ्य (संवाद) और गेय (संगीत) सुख से सुनाई देता है। साथ ही नाट्य मण्डप में ध्वनि गूजे न इसका भी नाट्यमण्डप निर्माताओं को ध्यान देना चाहिए। नाट्यमण्डप के प्रकाश व्यवस्था हेतु दीपक इत्यादि का व्यावहार किया जाना चाहिए। ऐसा अनुमान किया जाता है कि कुशाण काल की परइयाँ जो स्थान–स्थान पर खोदाई में निकली हैं कदाचित् (मिट्टी का दीपक) दीपक के काम के लिए उपयोगी रही होगी। इसी प्रकार दीपक जलाने से नाट्यमण्डप का प्रकाश व्यवस्था समुचित करना चाहिए। नाट्यमण्डप में दो द्वार की कल्पना की गयी है वह भी प्रकाश व्यवस्था के लिए आवश्यक है। आधुनिक समय में नाट्यमण्डप में ध्वनि यन्त्रों एवं विद्युत बल्वों द्वारा नाट्यमण्डप के ध्वनि एवं प्रकाश व्यवस्था को उत्तम बनाया जा सकता है।

5.3.7 भरत के अनुसार विकृष्ट मध्य नाट्यमण्डप की सर्वश्रेष्ठता

जिस स्थान पर अभिनय किया जाता है उसे नाट्यमण्डप कहते हैं। जिसके विषय में नाट्याचार्यों के मत में अनेक विषय उपस्थित किये गये हैं। उन्हीं से सम्बन्धित मध्यम् विकृष्ट नाट्यमण्डप की सभी नाट्यचार्यो ने अभिनय एवं दर्शन की दृष्टि से प्रशंसा किया है। अतः नौ या अट्ठारह प्रकार की नाट्य मण्डपों में विकृष्ट मध्यम नाट्यमण्डप श्रेष्ठ एवं उपयुक्त नाट्यमण्डप स्वीकार किया जाता है। आचार्यभरत की दृष्टि में यही नाट्यमण्डप उपादेय है। इसके सम्बन्ध में 'नाट्यशास्त्र' में कहा गया है–

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां प्रशस्तं मध्यमं स्मृतम्।
तत्र पाठ्यं च गेयं च सुखश्राव्यतरं भवेत्।। (ना.शा. 2/12)

अर्थात् सभी प्रकार के प्रेक्षागृहों में मध्यम प्रेक्षागृह को प्रशस्त अर्थात् सर्वोत्तम कहा गया है। क्योंकि पाठ्य (संवाद) तथा गेय (संगीत) इसमें सुख से सुना जा सकता है। इसलिए आचार्य भरत ने कहा है–

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तस्मान्मध्यममिष्यते।
यावत्पाठ्यं च गेयं च तत्र श्रव्यतरं भवेत्।। (ना.शा. 2/24)

अर्थात् इसलिए सभी प्रकार के प्रेक्षागृहों में मध्यम प्रेक्षागृह को श्रेष्ठ कहा जाता है। क्योंकि समस्त रूपकों में जो पाठ्य प्रधान नाट्य का शरीर रूप है और नाट्य का प्राण भूत उपरंजक गीत है। चकार से वाद्य आदि का ग्रहण होता है जो अधिक स्पष्ट सुनाई देता है। दूसरे चकार से दूसरा अभिनय भी दृश्य होता है यानि सुख के दिखाई देता है।

इस आदर्श नाट्यमण्डप का परिमाण 64×32 हाथ होता है। इससे बड़ा नाट्यमण्डप बनाने पर नाट्य अव्यक्त भाव का प्राप्त हो जाता है। न स्पष्ट दिखाई और न स्पष्ट

सुनाई देने के कारण अन्य बड़े नाट्यमण्डप अनुपादेय हो जाते हैं। उनका पाठ्य वेसुरा हो जाता है और दृश्य भी अदृश्य सा हो जाता है। इसलिए विकृष्ट मध्य नाट्यमण्डप आचार्य भरत को मान्य है क्योंकि यह सर्वविध से उपादेय एवं महत्त्वशील है।

5.3.8 रंगमंच के विषय में अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य

5.3.8.1 यवनिका

आचार्य भरत ने पूर्वरंग विधि में वाद्य आदि की व्यवस्था तथा कुछ गीतों का गायन यवनिका के भीतर ही निर्दिष्ट किया है। उन्होंने नृत्त तथा पाठ्य के लिए यवनिका के उठाये जाने का संकेत किया है। रंगशीर्ष में दोनों द्वारों के बीच वादक आदि के बैठने की व्यवस्था की जाती है। जिससे स्पष्ट होता है कि यवनिका रंगशीर्ष और रंगपीठ के बीच रखी जाती है। 'नाट्यशास्त्र' के पांचवें और बारहवें अध्याय में यवनिका तथा पटी शब्द का उल्लेख किया है। इस रूप में कहा गया है कि रंगमंडप पर प्रयोज्य नाट्य में कवि निबद्ध गीतों के अतरिक्त अन्य गीतों का प्रयोग मुख्य रंगभूमि पर यवनिका की ओट से करना नहीं चाहिए। परन्तु अन्य नृत्य एवं पाठ्य का प्रयोग यवनिका को हटाकर करना चाहिए। साथ ही बारहवें अध्याय में नाट्य प्रयोग के शुभारम्भ काल में ध्रुवगान के संप्रवृत्त होने पर आकर्षित होते ही नाना अर्थ और रस के आधारभूत पात्रों के प्रदेश का विधान किया गया है। इस पर की आकर्षण विधि से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि यहाँ पर आचार्य भरत ने जिन दो श्लोकों का उल्लेख किये हैं वे भी यवनिका अथवा पटी के प्रयोग का समर्थन करते हैं। जिसके सम्बन्ध में अभिनवगुप्त ने भी कहा है कि यवनिका के अपसारण से पूर्व तन्त्री एवं मृदंग वाद्यों से युक्त आलाप का प्रयोग तो होना चाहिए। परन्तु वह मार्ग तथा रसोपेत भी होना चाहिए। मार्ग से उनका अभिप्राय रंगभूमि पर अपेक्षितगृह उद्यान आदि का रमणीय दृश्य विधान है। यवनिका और रंगभूमि पर स्थान आदि का संकेत व्यापक दृश्यविधान का अंग है। यहाँ यवनिका के अपसारण तथा नानार्थ रससंभव पात्र के प्रवेश विधान से इस बात का स्पष्ट संकेत निकलता है कि आधुनिक ड्रॉप कर्टेज की तरह इस यवनिका का भी प्रयोग मुख्य रंगभूमि पर रंगपीठ और प्रेक्षकोपवेशन के मध्य किया जाता है। कई स्थलों पर यवनिका और यमनिक शब्द का भी इस सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है।

5.3.8.2 अन्य ग्रन्थों में नाट्यमण्डपविधि

आचार्य भरत के पश्चात् अन्य ग्रन्थों में नाट्यशाला का वर्णन मिलता है, जिनमें विष्णुधर्मोत्तर पुराण का विवरण महत्वपूर्ण है। इस पुराण में दो ही प्रकार के प्रेक्षागृह बताये गये हैं– आयात तथा चतुरस्र। चतुरस्र का प्रमाण 32 हाथ तथा आयत का उससे दुगना बताया गया है। भरत का तृतीय प्रेक्षागृह त्र्यस्र संभवतः इस पुराण के रचनाकाल तक लुप्त होने लगा था। साथ ही, यह पुराण मंदिर रंगशाला से अनुबद्ध है, जिसमें त्र्यस्र नाट्यगृह बनाने की परिपाटी संभवतः न रही हो। इस सम्बन्ध में यहाँ कहा गया है–

लास्यं स्वच्छन्दतः कार्यं मण्डपे यदि वा बहिः।
नाट्यं मण्डप एवं स्थान्यमण्डपं द्विविधं भवेत।।
आयतं चतुरस्रं तु द्वात्रिंशद्धस्तसम्मितम्।
चतुरस्रं न कर्त्तव्यमायतं द्विगुणायतम्।।

हीनाधिकं न कर्त्तव्य दृष्टादृष्टशुभप्रदम्।
हीने भवति सम्मर्दो विस्तीर्णे नाट्यगेययोः।।

(विष्णुधर्मोत्तर पुराण 3/22/4–6)

अर्थात् लास्य को अपनी इच्छानुसार मण्डप के भीतर अथवा बाहर किया जा सकता है किन्तु नाट्यमण्डप के भीतर ही होता है। मण्डप दो प्रकार का होता है। आयत (लम्बा) तथा चतुरस्र (चौकोर) मण्डप बत्तीस हाथ का होता है किन्तु आयत को इसका दो गुना होना चाहिए। मण्डप को इससे कम या अधिक नहीं बनाना चाहिए। ऐसा करने पर दृष्ट तथा अदृष्ट शुभ होता है। यहाँ यह भी कहा गया है कि मण्डप के कम विस्तृत होने पर भीड़ होती है और अधिक विस्तार करने पर नाट्य गेय की अभिव्यक्ति नहीं होती हैं।

शिल्परत्न नामक ग्रन्थ में राजमहल में निर्मित होने वाली रंगशाला का वर्णन किया गया है तथा उसमें स्तूप्य या स्तूपी और अलिंद को भी बनाने का निर्देश दिया गया है, जो नाट्यशास्त्र में अनुल्लिखित है। इस ग्रन्थ में रंगशाला के 16 भाग बताये गये हैं, जिनमें से 6 मंदिर की रंगशाला में भी बनाने का निर्देश दिया गया है। शिल्परत्न के अनुसार मंदिरों में कई प्रकार के मण्डप बनाये जाने चाहिये, जिनमें से नाट्यमण्डप भी एक है।

विश्वकर्म वास्तु प्रकाश में विश्वकर्मा प्रणीत राजसदन को ही रंगशाला कहा गया है। यह राजा के प्रासाद के सम्मुख या मंत्रियों, अमात्यों के भवनों के सामने अथवा इनसे कुछ हट कर भी बनायी जाती थी। रंगशाला इस ग्रंथ में तीन प्रकार की बताई गयी है– दैव, गांधर्व तथा मानुष। इसमें तीन मुख द्वार बताये गये हैं, जिन पर प्रहरी नियुक्त रहना चाहिये। भवन के भीतर लक्ष्मी, उमा, शिव आदि देवों की मूर्तिया लगायी जाए। रंगशाला बाहर एक वापी से घिरी हो। इसी प्रकार मानसोल्लास में भी राजप्रासाद की रंगशाला वर्णित है। रंगमंच या रंग बीच में होने से इसे मध्यरंग भी कहा गया है।

दसवीं शती के लगभग विरचित भावप्रकाश में भी नाट्यगृह के तीन प्रकार बताये गये हैं, परन्तु इसमें आचार्य भरत निरूपित विकृष्ट के स्थान पर वृत्त का उल्लेख है। भरत– सम्प्रदाय में वृत्त नाट्यगृह के लिये कहीं अवकाश नहीं है और शारदातनय की दृष्टि से विकृष्ट के स्थान पर वृत्त–स्वीकार कर लिया जाय, तो नाट्यशास्त्र की पूरी परंपरा बदल जाती है। वृत्ताकार रंगशाला नागार्जुनीकोण्डा में मिली है। 12वीं शती के लगभग रचित संगीतरत्नाकर में भी राजप्रासाद का नृत्यशाला वर्णित हैं। उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त इसमें शाला के पुष्पों से सुसज्जित होने तथा स्तंभों के रत्नजटित होने का भी वर्णन मिलता है। नारदकृतम संगीत मकरन्द का चित्र केवल चतुरस्र नाट्यगृह में वर्णित है। जो 96×96 के परिमाण का बताया गया है। इस नाट्यगृह में कामसूत्र में निरुपित 84 बंध चित्रित होने चाहिए। नाट्यशाला के भीतर विभिन्न रत्नों तथा मणियों का काम हो तथा वह पताकाओं, मालाओं और पुष्पों से सजी हो। इसमें चार द्वार होने चाहिए। राजा के बैठने के लिये प्रेक्षागार के मध्य में 12 गज की वर्गाकार एक वेदी बनायी जाती है।

संगीतमकरन्द में नाट्यशाला के नाम से नाट्यगृह का लक्षण इस प्रकार दिया गया है– 86 हाथ की माप के चतुरस्र आकार वाली, 24 स्तंभों तथा नानाचित्रों से भिन्न विकारों से सम्पन्न प्रकार वाली नाट्यशाला होती है। इसमें 84 बन्ध चित्रित हों अनेक

प्रकार के रत्नों, पटवस्त्रों तथा चामरों, पताकतोरणों से यह अलंकृत होती है। इसमें चार द्वार होते हैं। इसके बीच चौबीस हाथ वाली वेदिका होती है। इस नाट्यशाला में राजा के बैठने के लिये एक रम्य सिंहासन भी रहता है।

संगीतशास्त्र के परवर्ती ग्रंथों में संगीतदामोदर में संगीतशाला वर्णित है। यह भरत निरूपित नाट्यगृहों की तुलना में अत्यन्त छोटी – 20 हाथ के परिमाण की होती है। प्रेक्षास्थान, रंगमंच तथा नेपथ्यगृह की स्थिति इसमें वही है, जो आचार्य भरत में, परन्तु यमनिका (जवनिका) की स्थिति नेपथ्यगृह तथा रंगमंच के बीच उल्लिखित है, जो भरत की योजना से भिन्न है। आचार्य भरत के अनुसार इस स्थान पर (नेपथ्यगृह तथा रंगमंच के बीच) दीवार है। यह संभव है कि इस दीवार का स्थान सुविधा की दृष्टि से आगे चल कर जवनिका या पर्दे ने ले लिया हो। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र में मालविका के नाट्य को अपने नाटक के भीतर प्रस्तुत कराते समय रंगमंचीय व्यवस्था के संकेत किये हैं, उनसे भी यही परिवर्तित स्थिति सूचित होती है।

शिल्पशास्त्रों के ग्रन्थों में भोजकृत 'समराङ्गणसूत्रधार' उल्लेख्य है, यह ग्रन्थ भवन, राजप्रसाद आदि के निर्माण विधि के रूप में अत्यन्त प्रसिद्ध है। जिसमें गांधर्ववेश्म वर्णित है। यह राजप्रासाद का एक भाग होता था, जिसमें प्रेक्षा (नाट्यप्रदर्शन) तथा संगीत के आयोजन होते थे। शिल्पशास्त्र के अन्य ग्रंथ नारदशिल्प में भी तीन प्रकार के नाट्यगृह निरूपित हैं– दैव, गांधर्व तथा राजा। प्रथम मंदिरों में, दूसरा सार्वजनिक स्थानों पर तथा तीसरा राजप्रासाद के अन्तर्गत होता है। प्रथम में दिव्य विषयवस्तु के नाटक प्रस्तुत होते हैं, द्वितीय, तृतीय (क्षात्र) में वीररसप्रधान नाटक नाट्यशास्त्र के अनुरूप नारदशिल्प में भी नाट्यशाला तीन भागों में बाँटने का निर्देश है, जिसके मध्य भाग में रंगमंच होता है। इसके पीछे जवनिका की परिवर्तित स्थिति ही ग्रहण की गयी है। वासवराजकृत शिवतत्त्व रत्नहार में राजा वेंकटप्पा द्वारा इक्केरी में निर्मित वास्तविक रंगशाला का वर्णन है। इस शाला में हाथी दांत तथा चन्दन का अत्यधिक काम वर्णित है। इसके भीतर रत्न जड़े हुए हैं। बाहर चारों ओर उद्यान है। भित्तियों पर चित्रफलक लगाये गये थे। तमिल के सर्वप्राचीन महाकाव्य सीलप्पदिकारम् में भी रंगशाला का वर्णन किया गया है। यह उपर्युक्त रंगशालाओं की तुलना में अत्यन्त छोटी होती है। इसके रंगमंच का परिमाण केवल 8 गुणा, 7 गुणा 11 हाथ बताया गया है। इस मंच को केवल नृत्यप्रदर्शन की दृष्टि से उपयुक्त माना गया है। बाद के अनेक ग्रथकारों में कुम्भ (12वीं शती), विप्रदास, हम्मीर आदि ने भी नाट्यगृह का वर्णन किया है। कुम्भ तथा विप्रदास दोनों आचार्य भरत सम्पत तीन प्रकार– विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र स्वीकार करते हुए भी चतुरस्र के दो भेद मानते हैं– दीर्घ तथा सम। विकृष्ट का नाप 108 गुणा 64 हाथ बताया गया है। यह मंदिरों में निर्मित होता है। चतुरस्र दीर्घ 64 गुणा 32 हाथ का होता है। यह राजाओं के लिये होता है। चतुरस्र सम 32×32 हाथ होता है, यह ब्राह्मणों के लिये कहा गया है। त्र्यस्रगृह अन्य वर्गों के लिये होता है। विप्रदास के अनुसार नाट्यगृह के बाहर 5 हाथ का घेरा चारों ओर छोड़कर तीन हाथ ऊँची दीवार परकोटे की भाँति बनायी जानी चाहिये। इस दीवार में नाट्यगृह की परिधि में प्रवेश करने के लिये एक द्वार भी होता है। द्वार पर प्रहरी नियुक्त किया जाना चाहिए। इस प्रकार की दीवार नागार्जुनीकोण्डा के उत्खनन से प्राप्त रंगशाला के चारों ओर बनी हुई मिली है। कुम्भ और विप्रदास ने रंगपीठ तथा रंगशीर्ष दोनों को अलग–अलग माना है। साथ ही दोनों यह भी मानते हैं कि रंगशीर्ष रंगपीठ से डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। षड्दारुक की व्याख्या भी दोनों ने रंगशीर्ष के ऊपर निर्मित स्तंभों के ऊपर नीचे की जाने वाली काष्ठरचना के रूप में की है। रंगपीठ के दोनों ओर

निर्मित मत्तवारणी का भी उल्लेख दोनों लेखकों ने किया है। जिसके ऊपर एक उपरिभूमिका (छत) होती है, जिस पर एक कलश स्थापित किया जाता है। विप्रदास ने प्रेक्षागार में आचार्य भरतसम्मत सोपानाकृति पीठक आसनव्यवस्था का भी समर्थन किया है।

हम्मीर ने प्रकृष्ट, चतुरस्र और शस्त– यें तीन प्रकार के नाट्यगृह मान कर इनमें से प्रत्येक के श्रेष्ठ, मध्यम और अधम ये तीन–तीन भेद किये है।

भरत के बाद के ग्रथकारों ने नाट्यगह के नौ उपर्युक्त विवरण के अनुसार भेदोपभेद किये हैं, उनमें संख्या, परिमाण तथा सौन्दर्य विधान की दृष्टि से भरत के विधानों से अंतर है। परन्तु यह अंतर नगण्य तथा महत्वशून्य है। नाट्यगृह के प्रमुख हिस्सों नेपथ्य रंगमंच तथा प्रेक्षागृह की अवस्थिति के बारे ये सभी आचार्यवृन्द आचार्य भरत से सहमत है। साथ ही नाट्यगृह के कुछ ऐसे पक्षों पर भी वे प्रकाश डालते है जिनके सम्बन्ध में आचार्य भरत नाट्यशास्त्र में भी कुछ नहीं कहा है।

परवर्ती नाट्य आचार्यों के द्वारा नाट्यगृह के जो विवरण दिये गये हैं, उनसे संस्कृत रंगपरंपरा की दो अलग–अलग धाराएं स्पष्टतया उभरती हैं। एक राजाप्रासाद का रंगमंच है, जो आकार में छोटा, अधिक अलंकृत तथा बहुमूल्य सामग्री से निर्मित है। यह समाज के सबसे ऊपर के वर्ग– राजा, मंत्री, सामंत तथा राजसभा के पंडितों, कवियों तथा चारणों आदि के लिये था। संगीतरत्नाकर में प्रेक्षागार में बैठने की जो व्यवस्था बतायी गयी है, उसमें दरबार के इन लोगों के लिये कहाँ–कहाँ कौन सा आसन हो यह भी निर्दिष्ट किया गया है। इस व्यवस्था में निस्संदेह राजा का स्थान सर्वोपरि होता है। इस प्रकार की रंगशाला शिल्पतत्त्वरत्नाकर आदि ग्रंथों में उल्लिखित है। दूसरी परंपरा मंदिर के रंगशाला की है, जो आकार में पहली रंगशाला से बड़ी थी। इसका उल्लेख भी हम विष्णुधर्मोत्तरपुराण, नारदशिल्प आदि ग्रथों में प्राप्त होता है।

गोवर्धन के 'रससदनभाण' में नट द्वारा प्रबन्ध की नाट्यप्रस्तुति का विवरण दिया है, जिसमें रंगमंच के बीच तथा नट के पीछे मार्दङ्गिक के रहने का उल्लेख है–

मध्ये दीपज्वलनमधुरे पार्वतः पाणिधस्त्री
चित्रीभूते सरसहृदयैर्भूसुरै र्भासिताग्रे।
पृष्ठे मार्दङ्गिकविलसिते रंगदेशे प्रविष्टः
स्पष्टाकूतं नटयति नटः कोऽपि कश्चित् प्रबन्धम्।

इससे कुतप की जो स्थिति नाट्यशास्त्र में वर्णित है, उसकी सम्पुष्टि होती है। केरल में देवालय की रंगशाला जिसमें कुडियाट्टम् की प्रस्तुतियाँ होती हैं, वे कूत्तम्पलम् कहलाती हैं। भरतसम्मत नाट्यगृह के समान कूत्तम्पलम् का रंगमंच भी तीन भागों में विभाजित रहता है– जवनिकागृह, रंगशीर्ष तथा कुतप का स्थान, जिसे मृदङ्गपद कहा जाता है।

5.3.8.3 ग्रीक परम्परा में नाट्यगृह

ग्रीक रंगमंच की परम्परा में भारतीय नाट्यशास्त्र की भाँति नाट्यशाला के स्थापत्य आकार आदि के सुनिर्धारित मानक नहीं रहे हैं। कुछ तीन प्रकार की रंगशालाओं का प्रचलन इस परम्परा में अलग–अलग समयों में दिखलाई देता है। पाँचवीं श.ई.पू. की

रंगशालाएँ क्लासिकल एथेनियन कहलाती थीं। इनके बाद हेलेनिस्टिक रंगशालाएँ बनीं, जिनका समय चौथी शती से आरम्भ होता है। इन रंगशालाओं पर सिकन्दर की विजय यात्राओं के परिणाम से पनपी सम्मिश्र संस्कृति का प्रभाव है। अन्तिम चरण में ग्रीक रोमन रंगशालाएं आती है। इन तीनों प्रकार की रंगशालाएं सांस्कृतिक तथा कलात्मक स्तर पर एक दूसरे से बहुत अलग हैं। एथेनियन रंगशाला देवमन्दिर से जुड़ी होती थी तथा इसमें वेदिका रंगमंच के पीछे रहती थी।

प्राचीन ग्रीक रंगशालाएं खुले आसमान में चारों ओर से पहाड़ियों से घिरे स्थान में होती थी। रंगमंच अत्यधिक बड़ा रखा जाता था, क्योंकि कोरस (समूहगान) की मंडली को गायन के साथ–साथ गति के लिये बड़ी जगह की आवश्यकता थी। 465 ई. पू. के आस–पास ऐसी रंगशालाओं का उपयोग होने लगा जो देवालय या राजप्रासाद से जुड़ी होती थीं। रंगमंच तथा प्रेक्षागार इनमें खुले अहाते में ही होता था, परन्तु भित्ति रंगमंच की पृष्ठभूमि के लिये मिल जाती थी तथा इसी भित्ति से सटाकर बाद में एक प्रसाधनकक्ष (ड्रेसिंगरूम) भी बनाया जाने लगा और पुनः इसका उपयोग दृश्यबन्धों के लिये भी होने लगा।

इस प्रकार रंगशालाओं का प्रचलन भारत में भी रहा है, विष्णुधर्मोत्तरपुराण में देवालय को रंगशाला प्रतिपादित है।

प्रेक्षागार के अतिरिक्त वाद्यवृन्द के लिये वृत्ताकार मंच, उसके पीछे चतुर्भुज तथा उसके पीछे दृश्यबन्ध की भित्ति इतना ही स्वरूप एथेनियन रंगशाला का सामने आता है। प्रेक्षागार वाद्यवृन्द के तीन ओर रहता था तथा इसके एक ओर रंगमंच के बीच आने–जाने के लिये वीथी (गलियार) रहता था। इसी का विकसित रूप हेलेनिस्टिक रंगशाला में सामने आया। इसमें रंगमच की ऊँचाई बढ़ाई गयी तथा प्रेक्षागार को अर्धवृत्ताकार से कुछ बढाया गया। रंगमंच के पीछे तीन तक कक्ष बनाये जाने लगे। इनके सामने खम्भे रहते थे। ग्रीकरोमन रंगशालाओं में वाद्यवृन्द वृत्ताकार के स्थान पर अर्धवृत्ताकार से कुछ अधिक रह गया, रंगमंच के अग्रभाग में परिवर्तन हुआ तथा दृश्यबन्ध अधिक विकसित हुआ। इस प्रकार अनेक देशों की सभ्यता, परम्परा में नाट्यमण्डप या नाट्यगृह का वर्णन मिलता है जो पारम्परिक एवं शास्त्रीय नाट्य परम्परा के मध्य मणि के रूप में सामने आता है।

नाट्यगृह चित्रावली

१. भरत के अनुसार नाट्यमण्डपों के विभिन्न रूप

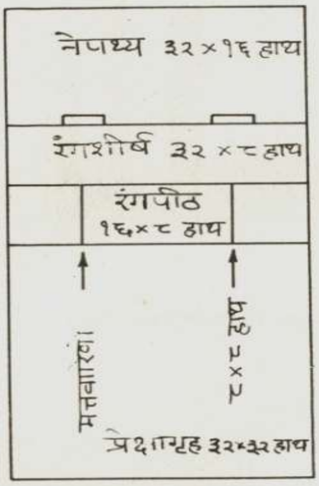

(क) विप्रकृष्ट मध्यनाट्यमण्डप

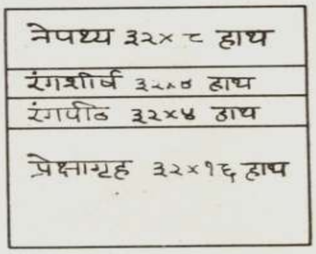

(ख) चतुरस्त्र नाट्यमण्डप

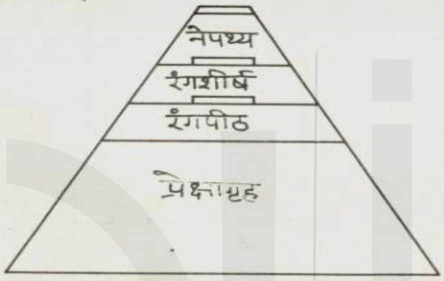

(ग) त्रिकोण नाट्यमण्डप
(माप १ इंच = ८० हाथ)

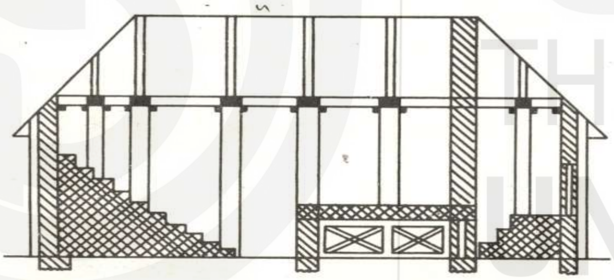

२. अभिनवगुप्त के अनुसार सोपानाकृतपीठ तथा उत्तानसुप्तपुरुषवत् प्रेक्षागृह

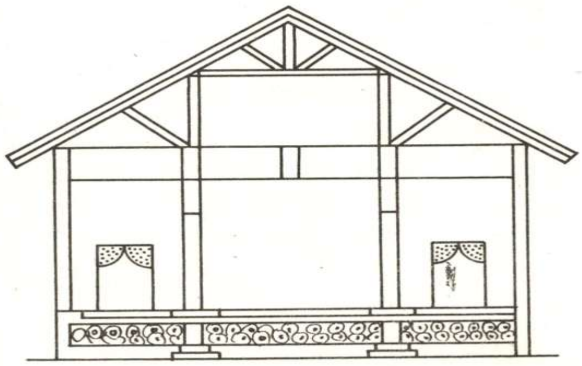

३. श्री सुब्बाराव के अनुसार मत्तवारणी तथा षड्दारुक

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

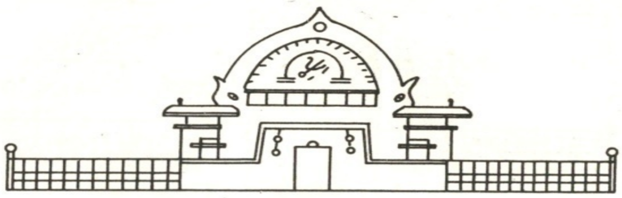

४. सम्मुख दृश्य

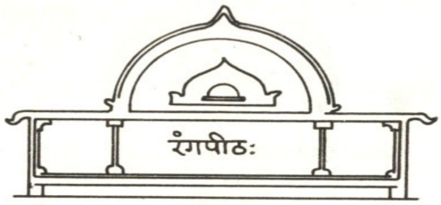

५. पृष्ठ दृश्य

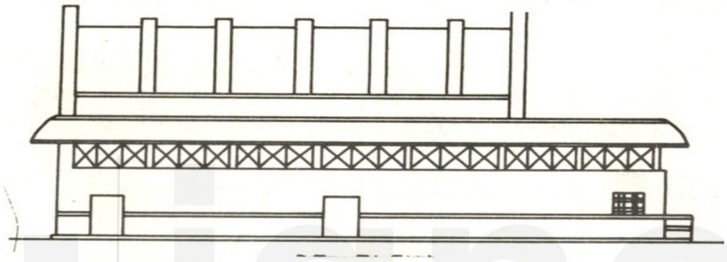

६. पार्श्व दृश्य

७. सुब्बाराव द्वारा भरत-कल्पित नाट्यमण्डपों की रूपरेखा

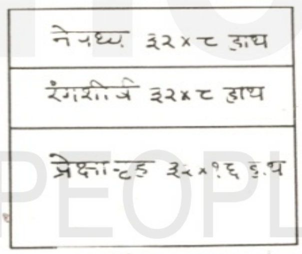

(ख) चतुरस्त्र नाट्यमण्डप

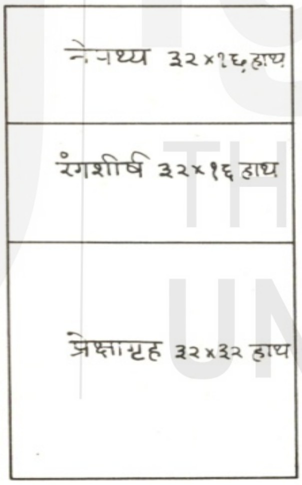

(क) विप्रकृष्ट मध्यनाट्यमण्डप

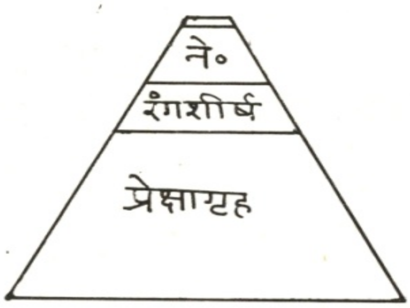

(ग) त्रिकोण नाट्यमण्डप

८. आचार्य भट्टतौत के अनुसार द्विभूमि नाट्यमण्डप

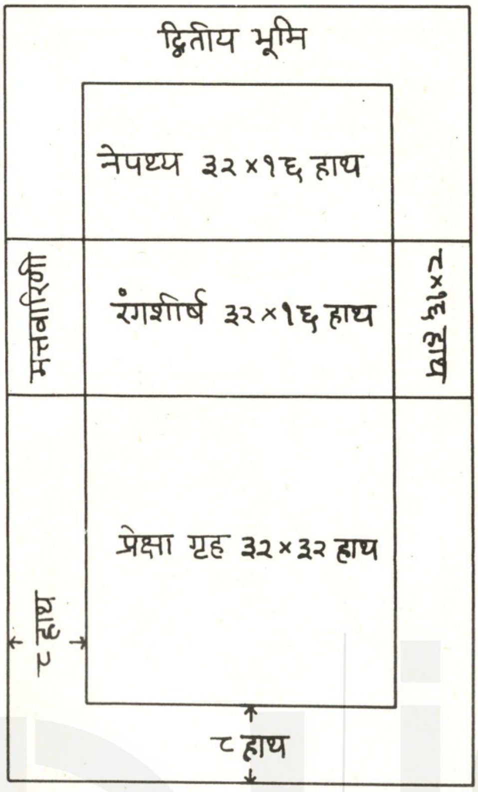

९. डॉ. मनमोहन घोष के अनुसार नाट्यगृह
(३२ X ३२ हाथ का रेखाचित्र)

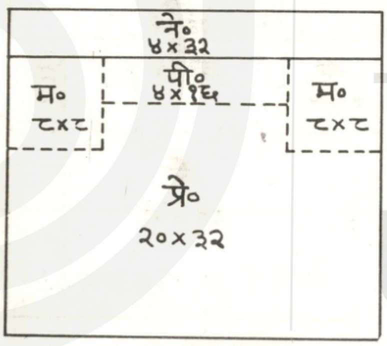

(क) चतुरस्त्र (वर्गाकार)

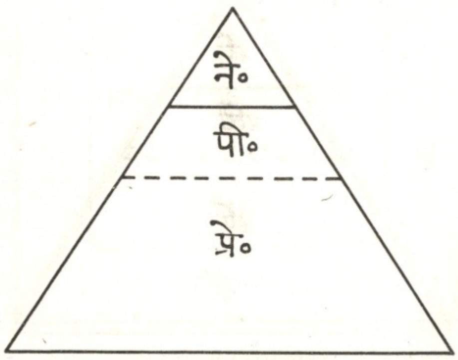

(ख) त्र्यस्त्र (त्रिभुजाकार)
(प्रत्येक रेखा ३२ हाथ का रेखाचित्र)
पैमाना - १ सेण्टीमीटर = ४ हाथ
संकेत - ने. - नेपथ्यगृह, पी. - रंगपीठ म. मत्तवारिणी, प्रे. - प्रेक्षकोपवेश

१०. श्री सुब्बाराव के अनुसार विकृष्ट (आयताकार) नाट्यगृह
(६४ X ३२ हाथ का रेखाचित्र)

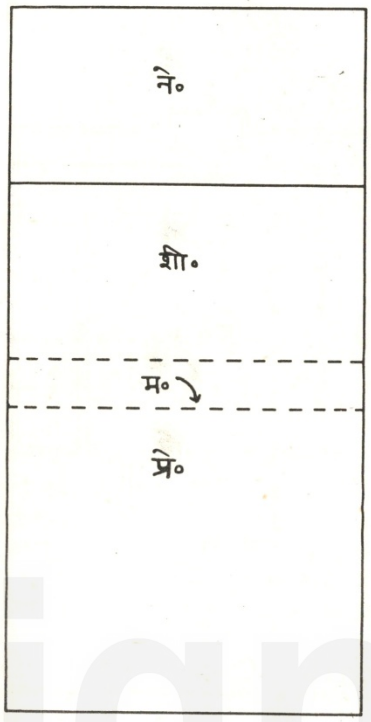

पैमाना - १ सेण्टीमीटर = ४ हाथ
संकेत - ने. - नेपथ्यगृह, शी. - रंगशीर्ष म. मत्तवारिणी, प्रे. - प्रेक्षकोपवेश

११. नागार्जुनीकोण्डा की नाट्यशाला

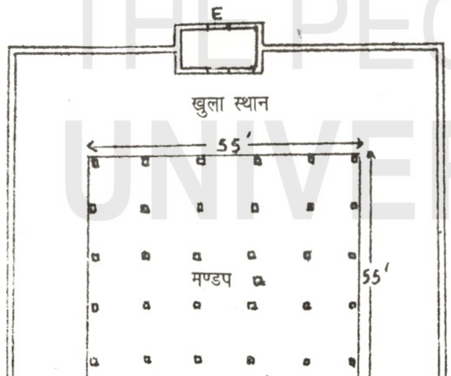

5.4 सारांश

यह इकाई रंगमंच निर्माण विधि के रूप में महत्त्वपूर्ण है। जिसमें मुख्य रूप से नाट्यमण्डप के निर्माण की विधि बतलायी गयी है। वस्तुतः नाट्यानुशासन के लिए नाट्यमण्डप का निर्माण आवश्यक होता है क्योंकि नाट्यमण्डप से ही नाट्य के अनुकूल वातावरण का निर्माण होता है। इसलिए नाट्यमण्डप व्यवस्थित और असुविधा रहित होना चाहिए। जिसके लिए नाट्याचार्यों द्वारा काष्ठ विधि, भित्तिकर्म, सुधाकर्म,

नेपथ्यगृह, उपवेशन व्यवस्था, ध्वनि एवं प्रकाश आदि की समुचित व्यवस्था हेतु निर्देश दिया गया है। उन्हीं से सम्बन्धित विषयों का यहाँ प्रतिपादन किया गया है।

5.5 शब्दावली

काष्ठविधि – लकड़ी से सम्बन्धित कार्य को काष्ठ विधि कहा जाता है।

भित्तिकर्म – दिवाल निर्माण ही भित्तिकर्म है।

सुधाकर्म – नाट्यमण्डप के चूना इत्यादि से कलई करना सुधाकर्म कहलाता है।

नेपथ्यगृह – रंगमंच पिछला भाग जहाँ भेष विन्यास इत्यादि का कार्य होता है उसे नेपथ्यगृह कहा जाता है।

उपवेशन – इसका अर्थ बैठना होता है यानि जहाँ प्रेक्षक बैठते हैं उसे उपवेशन कहा जाता है।

यवनिका – पूर्वरंग आदि के रूप में गीत–गायन आदि का प्रयोग यवनिका से संचालित होता है।

5.4 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, सं. डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2015
2. नाट्यशास्त्रविश्वकोश, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1999
3. भरत और भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009
4. श्रीविष्णुधर्मोत्तरमहापुराण, टीकाकार आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
5. नाट्यशास्त्रीय मूलतत्त्वों की विकास परम्परा, सं. कुसुम भूरिया दत्ता, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2012
6. नाट्यानुशासन, रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदाससस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, 2008
7. अग्निपुराण का नाट्यदर्शन, डॉ. संजय कुमार, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2018
8. नाट्यम् अंक 80, (नाट्यशास्त्र विशेषांक), नाट्यपरिषद् संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मार्च–2017
9. संस्कृत हिन्दी कोश, वामनशिवरामआप्टे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016

5.5 बोध प्रश्न

1. रंगमंच के भित्तिकर्म पर प्रकाश डालिए।
2. सुधाकर्म से आप क्या समझते हैं?
3. नाट्यमण्डप के साज–सज्जा पर प्रकाश डालिए।
4. आचार्य भरत के अनुसार विकृष्ट मध्यम रंगमंच की श्रेष्ठता का वर्णन कीजिए।
5. रंगमंच के अन्य परम्परा का वर्णन कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY